योगविद्या

वर्ष 7 अंक 9
सितम्बर 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, ऋषिकेश

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती;
2–3: भारत योग यात्रा 2018 – दिल्ली एवं नेपाल;
4: बाल योग शिविर, पादुका दर्शन

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

निष्काम सेवा

मानव-जीवन सेवा के लिए है। जनसेवा के प्रति जीवन समर्पित कर दें। जितनी शक्ति आप दूसरों की सेवा में लगायेंगे, उतनी दिव्य शक्ति आप पर बरसेगी। सेवा द्वारा ही आप दूसरों के मन पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

सेवा से अपने मन की शुद्धि तो होती ही है, इसके साथ ही अहंकार, घृणा, ईर्ष्या, स्वार्थ तथा अभिमान की भावनाएँ नष्ट हो जाती हैं; नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता तथा दया के गुण भी पनपते हैं; पार्थक्य की दुर्भावना मिटती है और अन्त में आपको आत्मदर्शन हो जाता है।

मुक्ति के मार्ग का रहस्य निष्काम सेवा में ही छिपा है। आरम्भ में निरन्तर निष्काम सेवा द्वारा ही साधकों को अपनी स्वार्थ-भावना को मिटाने का प्रयास करना चाहिए।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 9 · सितम्बर 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

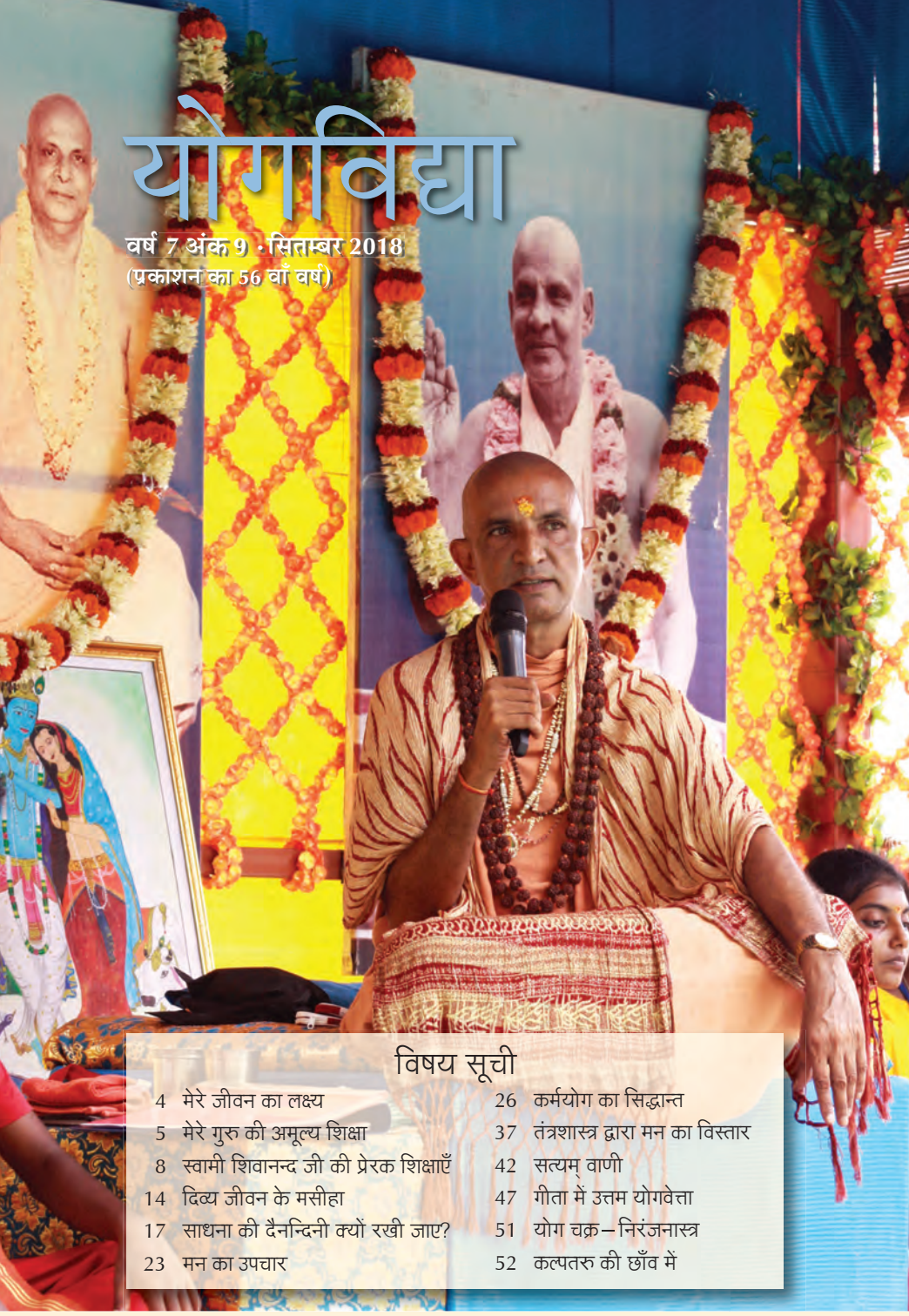

विषय सूची

4 मेरे जीवन का लक्ष्य
5 मेरे गुरु की अमूल्य शिक्षा
8 स्वामी शिवानन्द जी की प्रेरक शिक्षाएँ
14 दिव्य जीवन के मसीहा
17 साधना की दैनन्दिनी क्यों रखी जाए?
23 मन का उपचार
26 कर्मयोग का सिद्धान्त
37 तंत्रशास्त्र द्वारा मन का विस्तार
42 सत्यम् वाणी
47 गीता में उत्तम योगवेत्ता
51 योग चक्र–निरंजनास्त्र
52 कल्पतरु की छाँव में

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

मेरे जीवन का लक्ष्य

पतितों को उठाना, नेत्रहीनों का मार्गदर्शन करना, पीड़ितों को दिलासा देना, दु:खियों के चेहरे पर मुस्कान लाना और इस हेतु अपना सर्वस्व लुटा देना–यही मेरे जीवन का आदर्श है।

अपने हृदय और आत्मा की गहराई से ईश्वर में सम्पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और भक्ति रखना; अपने पड़ोसियों से आत्मवत् प्रेम करना; गउओं, मूक पशुओं, स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा करना–यही मेरे ध्येय हैं।

मेरे जीवन का मूलमंत्र है–प्रेम, और मेरा लक्ष्य है–सहज समाधि अवस्था अर्थात् सर्वोच्च चेतना में सहज रूप से अखण्ड निवास।

–स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मेरे गुरु की अमूल्य शिक्षा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

जिनका जीवन अप्राकृतिक होता है उनके जीवन को सुधारने के लिए नैचुरोपेथी जैसी पद्धतियों की जरूरत होती है। जैसे आसन-प्राणायाम हुआ, सात्त्विक भोजन हुआ, मिरची मत खाओ तो प्याज मत खाओ तो लहसुन मत खाओ तो दाल मत खाओ—ये चीजें उनके लिये हैं जो बिगड़ा माल हैं। हमने यहाँ रिखिया में एक ही नियम बनाया है। जो भी यहाँ रहता है, उसके लिए एक ही निर्देश है—दिनभर काम करो, काम करो, काम करो, थक जाओ और सो जाओ। इसी थकान का नाम आनन्द है।

दूसरा सिद्धान्त यह बनाया कि दुनिया में जितने भी लोग हैं, सब परिश्रम करते हैं, नौकरी करते हैं, खेती करते हैं, व्यापार करते हैं, चोरी करते हैं, पॉकेट मारते हैं, झूठ बोलते हैं, सत्य बोलते हैं, क्यों? अपने लिये। जो कुछ भी तुम करते हो वह अपने लिये करते हो, *आत्मनस्तु कामाय*। माने अपने बच्चों के लिये, अपनी स्त्री के लिये, अपने पिता जी के लिये, अपने रिश्तेदारों के लिये, परायों के लिये कोई आदमी काम नहीं करता। मनुष्य जाति में दूसरों के लिये काम करने की परम्परा है ही नहीं। मगर वृक्षों में हैं, पेड़ कभी अपना फल नहीं खाता, नदी कभी अपना जल नहीं पीती। जानवरों को देखो, कुत्ता दरवाजे पर बैठकर जिंदगीभर तुम्हारी सेवा करता रहता है, गाय जिंदगी भर तुमको अपना दूध पिलाती है, और मरने के बाद गाय की चमड़ी भी काम आती है। भैंस, हिरण, कछुऐ, मगर और साँप की चमड़ी भी काम आती है, लेकिन तुम्हारी चमड़ी कोई काम नहीं आएगी। मरने के बाद भी परोपकार नहीं कर पाते हो।

इसलिए यहाँ आने के बाद हमने कहा कि जो कोई भी यहाँ आयेगा उसे कुछ-न-कुछ दूसरों के लिये करना पड़ेगा। चाहे शरीर से करे, चाहे पैसा देकर करे। शरीर से नहीं कर सकते हो तो बीस-पच्चीस हजार रुपये दे दो, किसी के लिए घर बना देंगे। हम तो सीधी बात बोलते हैं। एक बात और है, जब आदमी स्वास्थ्य के लिये बहुत चिंता करता है, हमेशा उसको स्वास्थ्य का ख्याल रहता है कि प्याज खाना, तो लहसुन नहीं खाना, तो नीम की चटनी खाना, यह नहीं खाना, वह नहीं खाना, तो समझो कि उसका दिमाग चौबीस घंटे कचरे से भरा रहता है। ऐसा आदमी कैसे स्वस्थ होगा! जब आदमी सहज रूप से स्वस्थ जीवन व्यतीत करे और स्वास्थ्य के बारे में सोचे ही नहीं, वह सबसे अच्छा है।

बहुत साल पहले, भारत की एक बड़ी प्रसिद्ध महिला, जो अब नहीं रहीं, हमारे गुरुजी के आश्रम में आई थीं। लगभग पचास साल पहले की बात है। वे विदुषी थीं, राजनीति में थीं, प्रभावशाली भी थीं। उन दिनों मैं आश्रम में किचन इंचार्ज था।

वे बोलीं कि मैं तो खाना नहीं खाऊँगी। क्यों? कहा कि यहाँ तो भोजन में इमली पड़ती है। मैंने पूछा, 'तो आप क्या खायेंगी?' 'खाली आप हमें कागजी नींबू भेज दीजिये।' वे बहुत बड़े पद पर थीं, तो नींबू भेज दिये। नींबू को गिलास में डालकर न जाने क्या-क्या करती थीं उसका। लेकिन वे जीवनभर बीमार ही रहीं। दिनभर मुँह से डकारती रहती थीं, उनके पेट मे वायु पैदा होता रहता था। एक-दो बार मैंने उनसे कहा, 'आप सब कुछ खाइये, आपको गंगाजी के किनारे मकान दे देते हैं। ऊपर मंदिर है, सबेरे आप पूजा के लिये जाइये, फिर नीचे आइये। फिर अभिषेक के लिये जाइये, फिर नीचे आइये। फिर भोग के लिये जाइये, फिर नीचे आइये। फिर शाम को संध्या आरती होती है, उसमें जाइये और नीचे आइये। फिर रात में शयनारती होती है उसमें भी जाइये। पांच आरतियों में आप जाइये, आपका सब वायु निकल जाएगा!' खैर मेरी बात उन्होंने मानी नहीं।

दूसरों के लिये आदमी थोड़ा-सा भी काम करे तो उसके स्वास्थ्य पर असर पड़ेगा और उसके कर्मों पर भी असर पड़ेगा। गुरुजी ने मुझे 9 सितंबर, 1947 को यही बात कही थी जो अभी आपसे बोल रहा हूँ। उस समय मैंने आश्रम छोड़ने का निश्चय कर लिया था। साधु-संन्यास सब फालतू चीज है, धर्म-कर्म बेकार की बात है, छोड़ो सब कुछ, अपने घर जायेंगे, नौकरी वगैरह करेंगे, पढ़े-लिखे हैं, कमा लेंगे—हमने ऐसा निर्णय ले लिया था, क्योंकि सन् 1947 में हम लाहौर में थे। वहाँ आश्रम की पत्रिका छापते थे। सन् 1946 में हम वहाँ गए थे। अगले साल वहाँ दंगा भड़का और हमने ऋषिकेश चिट्ठी लिखी। आश्रम में चिट्ठी मिली नहीं, निर्देश आया नहीं, और हम वहाँ फँस गए। 14 अगस्त को, जिस दिन पाकिस्तान आजाद हुआ, हम पाकिस्तान में थे। हमने पाकिस्तान का स्वतंत्रता दिवस देखा, भारत का नहीं देखा।

हम वहाँ फँसे थे और अपने सामने देखते थे कि धर्म के नाम पर आदमी क्या कर सकता है—अश्लील, घृणित, वीभत्स, जो बोला भी नहीं जा सकता। सोचा, 'अगर धर्म यही चीज है तो मुझे नहीं चाहिये ऐसा धर्म। धर्म की कोई जरूरत नहीं मुझे। मारो गोली, मुझे साधु बनना ही नहीं है।' खैर, कुछ दिन बाद सेना आ गई, सेना ने हमें बचाया और हम ऋषिकेश आ गये करीब 18 अगस्त को।

8 सितंबर को स्वामी शिवानंद जी का जन्मदिन था। उस दिन 40-50 लोग संन्यास की लिस्ट में थे, उसमें हमारा भी नाम था। हमने कहा, हम नहीं लेंगे संन्यास। हमने ट्रिब्यून अखबार को चिट्ठी लिख दी थी, उनसे मेरी दोस्ती थी। हमने कहा, 'भाई, हम आश्रम छोड़ रहे हैं, हमको नौकरी दो।' उन्होंने कहा, 'ठीक है, सब-एडीटर के रूप में आ जाओ।' आखिर हम तो कलम के धनी थे, अच्छा लिख सकते थे। अखबार ने हमें चार सौ रुपये एडवान्स भेज दिये, उनसे हमने कपड़े बनवा लिये। कमीज, पतलून, जूते—एकदम बढ़िया सिविल ड्रेस तैयार हो गयी। 8 सितंबर को गुरुजी का जन्मदिन था, इसलिए उस दिन हमने आश्रम नहीं

छोड़ा। 9 सितंबर को हम उनके पास गये और बोले कि हम जा रहे हैं। उन्होंने पूछा, 'कहाँ?' हमने कहा, 'कहीं भी चले जायेंगे।' 'क्यों?' मैंने कहा, 'यहाँ रहने से क्या फायदा? यहाँ जो करना है, वहाँ भी तो वही करना है।'

तब उन्होंने कहा, 'देखो, एक कर्म वह होता है जिसका फल तुम्हें मिलता है, और एक कर्म वह होता है जो करते तो तुम हो, पर फल दूसरे को मिलता है।' सूक्ष्म बात है, ध्यान से समझना। एक कर्म वह होता है जो तुम करते हो और जिसका अच्छा-बुरा जो भी फल हो, तुमको मिलता है। और एक कर्म वह है जो करते तुम हो, मगर तुमको उसका कुछ फल नहीं मिलता, फल मिलता है स्वामी शिवानन्द जी को। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम टाईप करते हो, तुम प्रिंटिंग करते हो, तुम किताब बेचते हो, तुम मकान बनाते हो, तुम किचन चलाते हो, अतिथियों को देखते हो, सब कुछ करते हो, लेकिन फल किसको मिलता है? मेरे को, नाम जो मेरा हो रहा है। तुम कहीं भी जाआगे, जो भी कर्म करोगे, उसका भोग तुमको भोगना पड़ेगा, पर इस आश्रम में रहकर जो कर्म तुम कर रहे हो, उसका भोग तुमको नहीं मिलेगा, उसका भोग मैं भोगूँगा।' 9 सितंबर 1947 को उन्होंने मुझे यह बात कही थी जो जीवनभर मेरे साथ रही और इसीलिए इस आश्रम में जो भी काम किया जाता है, वह अपने लिये नहीं, बल्कि निस्स्वार्थ सेवा के रूप में किया जाता है।

–16 अप्रैल 2000, रिखियापीठ

स्वामी शिवानन्द जी की प्रेरक शिक्षाएँ

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे परम गुरु स्वामी शिवानन्द जी एक वरिष्ठ चिकित्सक रहे हैं। मलाया देश में उनकी प्रैक्टिस होती थी। लेकिन एक दिन वहाँ उनकी मुलाकात एक साधु से होती है। साधु उन्हें एक किताब देता है, जिसका नाम था 'ब्रह्म-विचार'। करीब सत्तर-अस्सी पन्नों की छोटी-सी किताब है। जब हमें इसे देखने का अवसर मिला, तब हमने पाया कि उसमें भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की मूल-धारणाओं को व्यक्त किया गया है।

इस किताब को पढ़कर स्वामी शिवानन्द जी के मन में एक विचित्र, सुखद परिवर्तन हुआ। वे अपने कर्म-क्षेत्र का त्याग कर वापिस भारत आ गए। चेन्नई में जहाज से उतरे, अपने एक मित्र को बुलाकर कहा कि यह सामान घर में दे देना। मैं घर नहीं जा रहा हूँ, बल्कि गुरु की खोज में, परमात्मा की खोज में हिमालय जा रहा हूँ। वे जहाज से उतरकर ट्रेन पर चढ़े और उत्तर भारत की ओर निकल पड़े। वहाँ आकर गुरु की खोज में भ्रमण करने लगते हैं। इलाहाबाद, बनारस, पण्ढरपुर जैसे अनेक तीर्थस्थानों में जाते हैं, और अन्त में ऋषिकेश पहुँचते हैं। वहाँ पर भी अनेक सन्तों से मुलाकात होती है, लेकिन गुरु नहीं मिलते।

एक दिन जब वे दोपहर में एक पेड़ की छाया में आराम कर रहे थे और चिन्तन कर रहे थे कि मुझे मेरे गुरु कहाँ मिलेंगे, तब उन्हें लगा जैसे उनकी बन्द आँखों के सामने कोई छाया आई हो। जब वे अपनी आँखों को खोलते हैं तो देखते हैं कि सामने एक संन्यासी खड़े हैं। संन्यासी पूछते हैं, 'तू इस पेड़ के नीचे क्यों बैठा है?' स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि मैं चिंतन कर रहा था कि मुझे मेरे गुरु कहाँ मिलेंगे। संन्यासी कहते हैं, 'मैं ही तेरा गुरु हूँ, तुझे अभी संन्यास की दीक्षा दूँगा।'

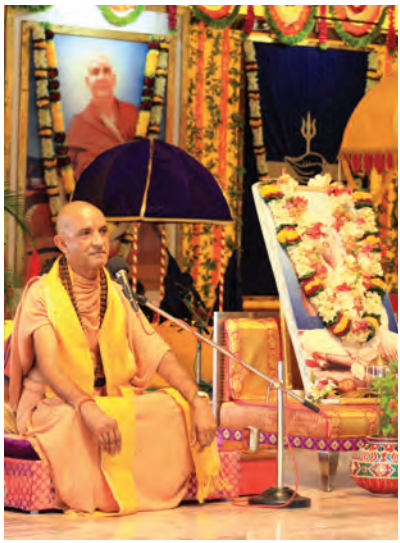

दस मिनट में ही उन्होंने स्वामी शिवानन्द जी को संन्यास की दीक्षा दे दी। उन्होंने सिर्फ इतना बताया कि मेरा नाम स्वामी विश्वानन्द सरस्वती है और मैं तुम्हें स्वामी शिवानन्द सरस्वती के नाम से दीक्षा दे रहा हूँ। बस इतना कहकर वे चले गए। गुरु और चेले के

बीच मात्र पन्द्रह-बीस मिनट की मुलाकात हुई, लेकिन इसी से उनके भीतर अध्यात्म की ज्योति प्रज्वलित हो गई।

जब लकड़ी सूखी रहती है तो जल्दी आग पकड़ती है पर जब लकड़ी गीली रहती है तब आग चाहे कितनी ही तेज क्यों न हो, लकड़ी से मात्र धुँआ निकलता है। जो आदमी संसार में रहता है, मोह-माया में आसक्त है, बंधन में है, वह गीली लकड़ी के समान है। उसे कितना ही जलाते जाओ, धुँआ ही निकलता है। पर जिसने अपने आपको सांसारिकता से अलग कर लिया है, वह सूखी लकड़ी के समान है। सूखी लकड़ी को एक माचिस की तीली भी जला सकती है। स्वामी शिवानन्द जी सूखी लकड़ी थे, क्योंकि उन्होंने सब छोड़ दिया था। वे एक ही चिंतन को लेकर आगे बढ़ रहे थे कि मैं किस प्रकार उच्च अनुभवों को प्राप्त करके दूसरों के उत्थान में अपना योगदान दे सकूँ। गुरु के साथ उनका जो पन्द्रह-बीस मिनट का सम्पर्क हुआ, वह पर्याप्त था। गुरु की ऊर्जा स्वामी शिवानन्द जी में अवतरित हो गई और स्वामी शिवानन्द जी संन्यास मार्ग पर चल पड़े।

आध्यात्मिक बाधाएँ

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि पहले आध्यात्मिक जीवन की बाधाओं को जान लो और उनसे अपने आपको सम्भाल कर रखो। जब तुम्हें मालूम होगा कि तुम्हारा शत्रु कौन है, तब तुम उससे बचकर रहोगे। अगर तुम्हें मालूम ही नहीं कि तुम्हारा शत्रु कौन है, तो उसके वार से कैसे बचोगे? हमारी आध्यात्मिक उन्नति में कौन-से शत्रु बाधा डालते हैं? स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं कि सबसे बड़ा शत्रु द्वैत-भाव है। यही माया का आधार भी है। फिर अहंकार है, अस्मिता है, मरने का भय है, घमण्ड, दर्प, अभिमान, राग-द्वेष, कामुकता, भावुकता, निष्क्रियता और दिमाग का मोटापन भी है।

शरीर मोटा होता है तो परेशानी होती है, चलने-फिरने में बहुत दिक्कत होती है। उसी प्रकार से अगर मन भी मोटा हो जाए, तो मन को हिलाने-डुलाने में बहुत दिक्कत होती है। मन पत्थर की तरह जड़वत् हो जाता है। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि द्वैत का एक परिणाम मन का मोटापा है, मतलब मन की ग्रहणशीलता समाप्त हो जाती है।

आध्यात्मिक दैनन्दिनी

इन सभी बाधाओं के प्रति तुम सजग होकर चलो और साथ-ही-साथ एक सूची बना लो कि मैं किन चीजों से सावधान रहूँगा। वह तुम्हारी आध्यात्मिक दैनन्दिनी होगी, आध्यात्मिक डायरी होगी, जिसे तुम बार-बार देखोगे कि मैं इस दैनन्दिनी के अनुसार आध्यात्मिक बाधाओं के प्रति सजग हूँ या नहीं, इन परिस्थितियों को झेल पाता हूँ या नहीं।

इस प्रकार तुम आत्म-सजगता और आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया से गुजरोगे। जैसे-जैसे तुम अपने बारे में जानकारी हासिल करोगे, जैसे-जैसे तुम अपने व्यक्तित्व, स्वभाव, व्यवहार और आचरण को जान पाओगे, वैसे-वैसे कमजोरियों को बदलने का प्रयास करोगे। इसके साथ-साथ तुम दिव्य गुणों को अपने जीवन में धारण करोगे। तुम्हारा जीवन दिव्य होता जाएगा। स्वामी शिवानन्द जी ने इस प्रकार बहुत ही सरल तरीके से समझाया है कि जीवन की साधना किस प्रकार होनी चाहिए, जिससे हम आध्यात्मिकता, शुद्धता, पवित्रता और उच्च, दिव्य अनुभवों को अपने जीवन में स्थान दे सकें।

स्वामी शिवानन्द जी की यह राय रही है कि योगाभ्यास द्वारा मानसिक और शारीरिक दुर्बलता से तुम मुक्ति पा लो। प्रार्थना और ध्यान, श्रद्धा और भक्ति, आत्मविश्वास और संकल्प शक्ति को प्राप्त करके अपने आपको परमार्थ से जोड़ो। जब स्वामी शिवानन्द जी ने समाधि ली थी, तब उनके अन्तिम शब्द थे, 'ईश्वर ही इस जगत् में सत्य है।' इस अन्तिम वाक्य को बोलने के पश्चात् उन्होंने अपने प्राण छोड़े थे। इस सर्वोच्च अनुभूति को उन्होंने वाकई अपने जीवन में प्राप्त किया था।

भावशुद्धि

स्वामी शिवानन्द जी का कहना था कि जब भी मैं किसी स्त्री को देखता हूँ, तो उन्हें देवी का स्वरूप मानते हुए मन-ही-मन नमस्कार करता हूँ। मन में *ॐ दुर्गायै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः* और *ॐ लक्ष्म्यै नमः* के मंत्रों से अपने सामने खड़ी महिला का अभिवादन करता हूँ। उन्हें देवी का दर्जा देता हूँ और मुझे उनका आशीर्वाद प्राप्त होता है। जब मैं किसी पुरुष को सामने देखता हूँ, तब उसे देवता रूप में अभिवादन करता हूँ। तुम नारायण हो, शिव हो, मेरे मन में यह भाव आता है। *ॐ नमः शिवाय* या *ॐ नमो नारायणाय* कहकर उन्हें मन-ही-मन प्रणाम करता हूँ, और उनके आशीर्वाद को ग्रहण करता हूँ। ये स्वामी शिवानन्द जी के शब्द हैं। वे यह नहीं कहते कि मैं उनको आशीर्वाद देता हूँ, बल्कि वे कहते हैं कि मैं अभिवादन के पश्चात् उनके आशीर्वाद को ग्रहण करता हूँ!

स्वामी शिवानन्द जी ने इस सिद्धान्त को वास्तव में अपने जीवन में जीया है। उनके जीवन में अनेकों ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जो साबित करती हैं कि एक पवित्र, शुद्ध अवस्था को प्राप्त करने के बाद ईश्वर की शक्ति उस मनुष्य के साथ हमेशा छाया के रूप में रहती है।

एक उदाहरण देता हूँ। ऋषिकेश में आश्रम बनने के पहले स्वामी शिवानन्द जी गंगा के दूसरे पार एक कुटिया में निवास करते थे। उनके बगल में अन्य कुटियाएँ थीं, जहाँ पर दूसरे साधु-संन्यासी निवास करते थे, अपनी साधना, सत्संग, स्वाध्याय किया करते थे। शाम के समय जब दो-चार साधु चलते-फिरते एक-दूसरे से मिलते

थे, तब थोड़ी बातचीत भी होती थी। एक बार नवरात्रि का समय आ रहा था। स्वामी शिवानन्द जी के पड़ोसी साधु ने घूमते-फिरते कह दिया, 'मेरी इच्छा है कि इस बार मैं माँ की पूजा पूरे साज-शृंगार के साथ, रत्न-वस्त्र-आभूषण-फल-फूल-द्रव्यों के साथ करूँ। लेकिन क्या करूँ, फकीर हूँ और कोई चेला है नहीं।' उसने मजाक में स्वामी शिवानन्द जी के सामने ऐसी बात छेड़ दी, और उन्होंने चुपचाप उसकी बात सुन ली।

कुछ दिन बीते, सब लोग बात भूल गए। एक दिन जब ये स्वामी बैठे हुए साधना कर रहे थे, तब किसी ने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने अपनी कुटिया का दरवाजा खोला तो देखा कि वहाँ पर तीन पंजाबी लड़कियाँ थाली लिए खड़ी हैं। साधु उन लड़कियों से पूछते हैं कि तुम कहाँ से आयी हो, यह सब क्या है? लड़कियाँ कहती हैं कि हमें स्वामी शिवानन्द जी ने भेजा है। आपने इच्छा व्यक्त की थी कि आप पूरी धूम-धाम से माँ की आराधना करना चाहते हैं, तो स्वामी शिवानन्द जी ने व्यवस्था करके यह सब सामान आपके लिए भेजा है। साधु ने सोचा कि हो सकता है स्वामी शिवानन्द जी ने अपने किसी सम्पन्न भक्त से कहा होगा और उसी ने सब सामान की व्यवस्था कर दी होगी। उन्होंने सामान ले लिया।

जब वे शाम को स्वामी शिवानन्द जी से मिलते हैं, तो कहते हैं, 'महात्मन् धन्यवाद।' शिवानन्द जी ने पूछा, 'किस चीज का धन्यवाद?' उन्होंने कहा, 'आपने जो सामान भेजा है, उसके लिए।' शिवानन्द जी ने कहा, 'नहीं, मैंने तो कोई सामान नहीं भेजा। मैं कहाँ से भेजूँगा?' 'लेकिन जो तीन पंजाबी लड़कियाँ आई थीं, उन्होंने आपका नाम लिया है।' साधु ने दूसरे अन्नक्षेत्रों और आश्रमों में पता लगाया, लेकिन कहीं पर भी उन लड़कियों का पता नहीं चला।

अनेकों साल बाद स्वामी शिवानन्द जी की महासमाधि के पश्चात् जब यही साधु आश्रम आये, तब उन्होंने वहाँ के संन्यासियों को यह घटना सुनायी। उन्होंने कहा, 'सच्चे भक्त और साधक तो वही थे। मैंने तो उनके सामने केवल अपनी इच्छा व्यक्त की थी, लेकिन जिसका भाव और मन पवित्र है, अगर वह कुछ सोचे तो भगवान स्वयं उसे पूरा करने के लिए उतावले हो जाते हैं। यह श्रद्धा और भक्ति की पराकाष्ठा है।'

जहाँ तपस्या और साधना आध्यात्मिकता को जागृत करने का पहला मार्ग है, वहीं श्रद्धा, भक्ति, प्रार्थना और आराधना दूसरा मार्ग है। दोनों मार्ग गृहस्थ पर भी लागू होते हैं और साधु पर भी। अन्तर केवल इतना है कि गृहस्थ की प्रार्थना सकाम और साधु की प्रार्थना निष्काम होती है। गृहस्थ अपने लिए प्रार्थना करता है जबकि साधु सबके लिए। साधु की प्रार्थना की शक्ति कई गुणा तीव्र हो जाती है। यह त्याग तथा निष्काम मानसिकता का परिणाम है। निष्काम मानसिकता का उपयोग भक्ति-मार्ग में भी होता है, कर्म-मार्ग और ज्ञान-मार्ग में भी। इसलिए मैंने निष्काम-मानसिकता शब्द का प्रयोग किया है, निष्काम-भक्ति का नहीं, क्योंकि यह एक भावना है, एक मानसिकता है, सोचने का एक तरीका है।

अध्यात्म के अठारह आधारभूत सद्‌गुण

स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि कुछ ऐसे गुण हैं जिन्हें जीवन में प्राप्त करने का अवश्य प्रयत्न करना, क्योंकि ये तुम्हारे जीवन को अनुशासित, व्यवस्थित और सकारात्मक बनाएँगे। जब तक तुम अपने जीवन को अनुशासित नहीं करोगे, द्वैत-भाव से मुक्ति संभव नहीं। अनुशासनहीनता तुम्हें पुनः द्वैत में खींचकर ले आएगी, जबकि अनुशासन तुम्हें अपने मन पर संयम देगा।

अपने आपको अनुशासित, व्यवस्थित करने के लिए जिन नियमों का पालन करना आवश्यक है, उनमें पहला है मन में सौम्य-भाव को धारण किए रहना। मन को डाँवाडोल नहीं होना है, न इधर झुकना है, न उधर। चेहरे पर सुख-दुःख का चिह्न नहीं। रामचरितमानस में वर्णन आया है कि जब रामचंद्र जी को मालूम पड़ा कि उन्हें राज्य मिलने वाला है, तो वे मुस्कुराए। जब उन्हें मालूम पड़ा कि उन्हें वनवास मिला है, तब भी मुस्कुराए– 'बिहसे रघुराई।' अगर हमें वह खबर मिले, तो क्या चेहरे पर मुस्कुराहट दिखलाई देगी? नहीं। जिसका मन और चित्त स्थिर

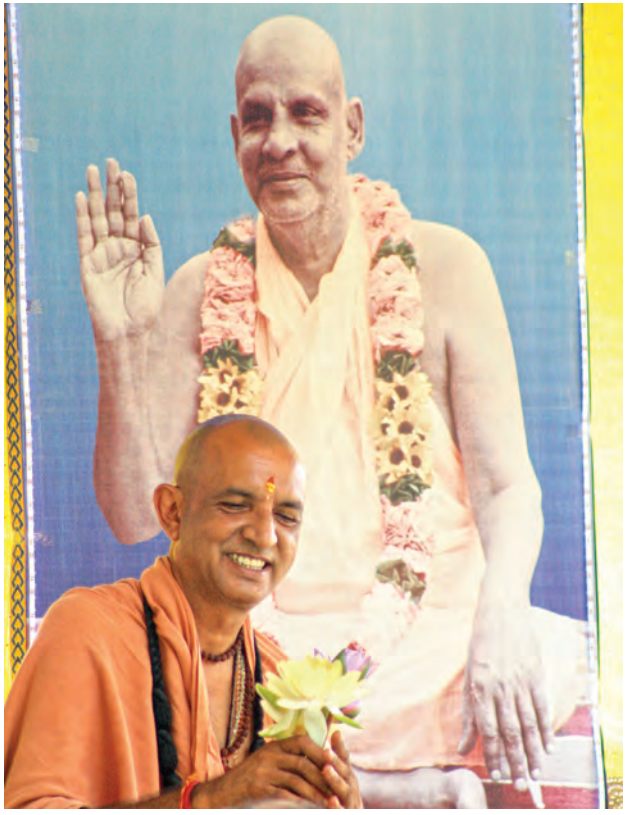

है, उसका स्वभाव सौम्य होता है। इसलिये अपने मन को स्थिर करके मन में सौम्य स्वभाव को अपनाओ, यह पहला अनुशासन है। इसी सौम्यता को श्रीकृष्ण ने गीता में मानसिक तप कहा है–

मन:प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह:।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥17.16॥

दूसरा अनुशासन नियमितता है। जो करते हो उसमें नियमितता होनी चाहिए, क्योंकि नियमितता से ही शरीर का, मन का, भावना का, आत्मा का पोषण होता है। आप निश्चित समय पर भोजन करते हो या दिन-भर खाते रहते हो? नाश्ते का, दिन के भोजन का, शाम के भोजन का एक समय होता है। उस समय पर भोजन करने से वह अच्छा पचता भी है, क्योंकि एक नियम, आदत, स्वभाव बना हुआ है। उसी प्रकार जब मन में कुछ नियम होते हैं, तब मन स्वास्थ्य, सुख और शान्ति को प्राप्त करता है।

सौम्य स्वभाव को धारण करना, नियमितता का पालन करना, अपने आपको दंभहीन, घमण्डहीन बनाने का प्रयास करना, निष्कपट होकर जीने का संकल्प लेना, सरल बनकर जीना, सत्य का आचरण करना, सम-भाव को धारण करना, एकाग्रता को प्राप्त करना, जीवन से चिड़चिड़ेपन को हटाना, व्यवहार-कुशल होना, विनम्र होना, दृढ़ निश्चयी होना, ईमानदार होना, शालीन होना, उदार होना, परोपकारी होना, दानी होना और पवित्र होना, स्वामी शिवानन्द जी ने इन 18 बिन्दुओं पर चर्चा की है।

ये 18 बिन्दु, 18 चिंतन, 18 विचार मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित और अनुशासित करते हैं। इस व्यवस्था और अनुशासन से लोभ, कामुकता, मूर्खता, ढिठाई, अस्थिरता, भद्दापन, सनक, चिड़चिड़ापन–इन सबसे हम मुक्ति पाते हैं, तनाव से मुक्ति पाते हैं। ये यम-नियम सभी के लिए एक-समान लागू होते हैं, चाहे कोई गृहस्थ हो या संन्यासी। इनके द्वारा अपने चित्त के व्यवहार को ठीक रखना है।

हमलोगों की खोपड़ी में चार परतें हैं। पहली मन की, दूसरी बुद्धि की, तीसरी चित्त की और चौथी परत अहंकार की है। इन चार परतों की चंचलता ही चंचल चित्तवृत्तियों को जन्म देती है। इन वृत्तियों का निरोध करना शान्ति को प्राप्त करने का उपाय है। योग सूत्रों में कहा गया है, *योग: चित्तवृत्तिनिरोध:।* यह एक अनुशासन है, एक साधना है, एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा हम द्वैतपन के दुष्परिणाम से अपने आपको मुक्त कर पाएँगे और यही स्वामी शिवानन्द जी की मुख्य शिक्षा रही है।

–6 मार्च 2013, शिवालय, मुंगेर

दिव्य जीवन के मसीहा

स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती

ईश्वर ने अपने ज्ञान और करुणा से अनुप्रेरित हो, प्रेम एवं सत्य के संदेश वाहक, श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती को भेजा। उन्होंने दिव्य जीवन के कार्य की पूर्ति के लिए ही जन्म धारण किया तथा उसके लिए ही अपना उत्सर्ग किया। मुझे उनको देखने-समझने व चरणों के निकट बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

वे संसार के समक्ष उन उपदेशों की घोषणा करते थे जिनसे अविद्याग्रस्त मनुष्य उन्हें सुनकर लाभ उठावें—'सेवा, प्रेम, दान, शौच, मनन, ध्यान, साक्षात्कार।' वे सब के समक्ष अपना उदाहरण रखते थे, तथा सबका नेतृत्व करते हुए उन्हें पूर्णता के पथ का प्रदर्शन करते थे, जिससे वे 'उस' परम महिमा की प्राप्ति में समर्थ हो सकें।

स्वामी शिवानन्द जी समस्त संसार के मित्र तथा गुरु थे। उनके उपदेश हैं—सद्गुणों का उपार्जन करो, दुर्गुणों को दूर करो, अहंकार को विनष्ट करो। सभी भूतों में अंतर्यामी को देखो। अपने लिए प्रदीप बनो तथा संसार के लिए ज्योति। स्वयं प्रबुद्ध बनो और समस्त संसार को उद्बुद्ध करो। इस भौतिकवादी, तमसाच्छन्न संसार में अध्यात्म तथा ईश्वरत्व की ज्योति को प्रदीप्त बनाए रखो।

स्वामी शिवानन्द जी ने तपस्या के सामान्य रूपों का अभ्यास तो किया ही, जैसे गंगा जी के बर्फीले जल में खड़े रहकर जप करना, जमीन पर बिना बिस्तर के सोना, बहुत दिनों तक उपवास करना, हिमालय से मानसरोवर तक की पैदल यात्रा करना, वे वास्तव में भगवद् गीता में वर्णित तपस्या-त्रय के सजीव उदाहरण थे। *देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञ पूजनम्*—इसका तो वे अक्षरश: पालन करते थे। इसके साथ-साथ गीता में वर्णित शारीरिक-तपस्या, यथा शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य तथा अहिंसा, यह तो उनके लिए स्वाभाविक ही था। जिन लोगों ने शिवानन्द जी से भेंट की है, वे जानते हैं कि उनके शब्द अमृत एवं मधु से भरपूर थे। उनके अधरों से कठोर शब्द निकल ही नहीं सकते थे। जो शब्द सत्यम्, प्रियम् तथा हितम् के त्रिलय जांच में खरा नहीं उतरता, उस शब्द को वे बोलते ही नहीं थे। वे उस शब्द को भी नहीं बोलते, जो सत्य तो है, परन्तु उसके कहने से आघात पहुँचने की आशंका है। उसे ईश्वर के ऊपर छोड़ देते। स्वामी जी का अपनी वाणी पर पूर्णत: नियंत्रण था, और यही उनकी वाणी का तपस् था। मन:प्रसाद, सौम्यत्व, मौन, आत्मविनिग्रह और भाव-संशुद्धि—ये सभी स्वामी जी में अपनी परिपूर्णता में पाए जाते हैं। सदा सौम्य, शान्त तथा मुदित रहकर वे अपने चतुर्दिक लोगों में शान्ति एवं आनन्द को विकीर्ण करते रहते। उनका प्रत्येक शब्द नपा-तुला तथा श्रोता की आत्मा को प्रबुद्ध करने योग्य रहता। उनके व्यक्तित्व का प्रत्येक कण उनकी आज्ञा के अनुसार ही चलता।

अपमान सहो, नुकसान सहो—यही सबसे बड़ी साधना है। स्वामी जी अपनी कोटि के सम्भवत: एक ही संत थे जो इसका अक्षरश: पालन करते। जब आप इसका अभ्यास प्रारम्भ करेंगे तब पता चलेगा कि इसमें कितनी कठिनाई है। अपमान सहन करने से मनुष्य के भीतर की ज्वाला क्रोध के रूप में अभिव्यक्त न होकर उसके अन्दर के सारे पापों को जला डालती है। विरोधी शिष्य की कठोर बातों को सुनकर भी वे हँस देते थे, तथा उसे आशीर्वाद देते थे।

स्वामी शिवानन्द जी रचनात्मक तथा सक्रिय प्रार्थना के हिमायती थे—वह प्रार्थना जो हृदय के अन्तरतम से नि:सृत होकर मनुष्य के कण-कण में उसी प्रकार परिव्याप्त होती है, जिस प्रकार रुधिर हृदय से संचरित होकर समस्त शरीर में परिव्याप्त होता है तथा उसका पोषण करता है। सत्संग के समय हम उन्हें ऐसा कहते सुनते थे 'अमुक व्यक्ति आज चल बसा, दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए हम सब प्रार्थना करें। अमुक व्यक्ति का स्वास्थ्य अच्छा नहीं है, अत: हम सब उनके स्वास्थ्य की पुनर्प्राप्ति तथा दीर्घायु के लिए प्रार्थना करें।' इसके पश्चात् वे स्वयं कीर्तन करते थे और उपस्थित जन उनका अनुगमन करते थे। अंत में दो मिनट मौन होकर ध्यान करते थे। यथार्थत: ऐसी प्रार्थनाओं ने अनेक आश्चर्य संघटित किए हैं।

स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि हम निष्काम भाव से सबके लिए प्रार्थना करें। उदाहरणार्थ, जन्म-दिवस के दिन किसी के आश्रम दर्शनार्थ आने पर उनके स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते समय स्वामी जी गाते थे—'भगवान सम्पन्न करें श्री .... जी तथा उनके परिवार को, और समस्त संसार को स्वास्थ्य, दीर्घायु, शान्ति, आनन्द और अमरत्व से।' फिर वे तीन जय ध्वनि करवाते थे 'श्री .... जी तथा उनका परिवार चिरंजीवी हो।' चौथी ध्वनि में कहते थे, 'समस्त मानव जाति चिरंजीवी हो।'

स्वामी शिवानन्द जी की प्रार्थना मनुष्यों तक ही सीमित नहीं थी। किसी घायल बन्दर या कुत्ते के लिए भी स्वामी जी उसी प्रकार महामृत्युंजय मंत्र का जप करते थे जिस प्रकार किसी भी रुग्ण व्यक्ति के प्रति किया जाता है। रास्ते में पड़ी हुई मृतक छिपकली की जीवात्मा के लिए भी वे महामंत्र कीर्तन कर डालते थे। स्वामी जी के लिए सारे प्राणी एक समान थे, और उनकी प्रार्थना सार्वभौमिक थी।

प्रार्थना ही जीवन तथा साधना में सफलता की कुंजी है। ईश्वर की सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता एवं सर्वशक्तिमत्ता की स्वीकृति तथा जीवात्मा की ससीमता व दुर्बलता का मान ही प्रार्थना है। अत: प्रार्थना ईश्वरार्पण तथा भक्ति साधना का आवश्यक अंग है। स्वामी जी के सत्संग भवन में देवी-देवताओं के चित्र थे, वे अपने दैनिक कार्यक्रमों में उनकी सत्ता का अनुभव करते थे। ज्योंही वे कार्यालय में प्रवेश करते, त्योंही उनकी दृष्टि उन चित्रों की ओर जाती, मानो कह रहे हों—मैं यहाँ हूँ, आप की ही इच्छा की पूर्ति हेतु आपका सहयोगी, आपका निमित्त स्वरूप।

कार्यक्रम शुरू करने से पहले स्वामी जी कुछ क्षण के लिए मूक प्रार्थना अर्पित करते। एक काम समाप्त करने के बाद और दूसरा काम शुरू करने के पहले, स्वामी जी अपनी कुर्सी पर पीछे टिककर एक आँख को बंद करते हुए दूसरी से प्रभु के किसी चित्र की ओर दृष्टि-निक्षेप कर लेते। वह क्षणिक काल ही उनके लिए अमरत्व, अनन्तता, परमशान्ति तथा परमानन्द था। इस प्रकार परमात्मा का योग सतत् बना रहता। स्वामी शिवानन्द जी के लिए इन आलम्बनों की आवश्यकता ही नहीं थी क्योंकि वे तो सदा ब्राह्मी चेतना में संस्थित रहते थे, परन्तु वे ऐसा करते थे हम लोगों के लिए उदाहरण के स्थापनार्थ।

गंगा के किनारे निर्जन कुटी में बैठकर इस महर्षि ने समस्त संसार में सुख का संचार किया है। देश-विदेश में सहस्त्रों लोगों ने उनके संदेशों को पढ़ा है, उनकी पुस्तकों का अध्ययन किया है। उनकी पुस्तकों का कई भाषा में अनुवाद हो चुका है। उनके संदेश का प्रभाव आज पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों के रूप में समस्त संसार में फैल गया है। 300 पुस्तकों के वे विख्यात लेखक हैं। सन् 1953 में स्वामी शिवानन्द जी ने ऋषिकेश में विश्वधर्म सम्मेलन बुलाया, जिसमें विश्व के सारे देशों से प्रतिनिधि आये थे। अनेक धर्मों के नेताओं ने स्वामी जी के नेतृत्व में सारे धर्मों की एकता की घोषणा की। यह ऐतिहासिक घटना थी।

मैं गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी के पास विश्व-धर्म-सम्मेलन के समय अनायास ही पहुँचा था। उनका साहित्य पढ़कर ज्ञात हुआ कि मानव अगर गुरुदर्शन को उत्सुक होता है, तो समय पर योग्य गुरु को पा ही लेता है। उनसे पत्र द्वारा आशीर्वाद प्राप्त किया। ध्रुव का ज्ञान हो चुका है, तिमिर का भान हो चुका है, और निशा का अवसान भी हो चुका है, क्योंकि उनके आशीर्वाद का प्रतीक, पथ प्रदर्शक ध्रुव हमें 'स्वामी सत्यम्' के रूप में प्राप्त हो चुका है, जिनके चरणों के आलोक में हमने सब कुछ पाया है।

8 सितम्बर आकर हमें झकझोर देती है, हम 'मौन' नमन के सिवा उन्हें क्या दे सकते हैं। कबीर जी के शब्दों में–

सतगुरु की महिमा अनंत,
अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़िया,
अनंत दिखावण हार॥

–'स्वर्णिम संग्रह-1' से उद्धृत

साधना की दैनन्दिनी क्यों रखी जाए?

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

साधना की डायरी या आध्यात्मिक दैनन्दिनी को रखने के महत्त्व पर अवश्य कुछ कहना चाहिए। सामान्य दैनन्दिनी का तो अपना महत्त्व है ही, साधना की दैनन्दिनी का और भी अधिक महत्त्व है। जो लोग डायरी रखा करते हैं, वे जानते हैं कि इससे क्या-क्या लाभ हैं। साधक की दैनन्दिनी मन के लिए चाबुक समान है, जो उसे ठीक रास्ते से अलग नहीं फिरने देगी। साधक के लिए डायरी शिक्षक और गुरु के समान है। जो लोग आध्यात्मिक मार्ग पर तीव्र गति से अग्रसर होना चाहते हों, चारित्रिक और सामाजिक सद्‌गुणों का संचय करना चाहते हों तो वे यह बात अवश्य समझ लें कि उन्हें अपने प्रतिदिन के कार्य का विवरण अपने पास रखना ही होगा।

महात्मा गाँधी डायरी रखने को कहा करते थे। जिन लोगों ने महात्मा गाँधी से डायरी रखने का उपदेश पाया, वे आज भी उसका पालन करते आ रहे हैं। मैं भी डायरी रखने का पक्षपाती हूँ और जो लोग मेरे सम्पर्क में आते हैं, मैं उन्हें पहले-पहल डायरी की एक प्रति ही भेंट करता हूँ जिस पर वे अपने पूरे दिन का विवरण नोट कर सकें।

मेरे शिष्य और विद्यार्थी प्रति-माह उस दैनन्दिनी को मेरे पास समालोचना के लिए भेजते हैं। डायरी के साथ-साथ मंत्र-लेखन-पुस्तिका भी रहती है, जिसमें अपने-अपने इष्टदेव का मंत्र सुन्दरतापूर्वक लिखा हुआ रहता है। मंत्र-लेखन एक ऐसी विधि है जिसका प्रभाव साधक के चित्त पर सीधा जाकर पड़ता हैं। मंत्र-लेखन से सहज एकाग्रता आती है जो जप और ध्यान में यत्न करने पर भी नहीं आ सकती। जिस मंत्र का जप किया जा रहा है, उसी मंत्र को एक पुस्तिका में लिखने का नाम मंत्र-लेखन है। मंत्र-लेखन शुद्ध होना चाहिए, दर्शनीय होना चाहिए।

संसार के अनेक महापुरुष डायरी रखा करते थे। बेंजामिन फ्रैंकलिन के जीवन-चरित्र से तो सभी परिचित हैं, वे भी डायरी रखने के व्यावहारिक पक्षपाती थे। अपने जीवन की कमियों और दुर्बलताओं तथा सभी प्रकार की दैनिक घटनाओं का विवरण वह अपनी डायरी में नोट करते गये। आज वे संसार के महापुरुषों में गिने जाते हैं। डायरी का उद्‌देश्य मन को संकल्प-शक्ति प्रदान करना है। आखिर मन को भी कुछ-न-कुछ आधार अवश्य चाहिए जिसके द्वारा उसे संकल्प-प्रेरणा मिल सके। डायरी एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा मन को नित्यप्रति अपने कर्मों की पुनरावृत्ति करने का अवसर मिलता है, उनकी जाँच का मौका मिलता है और दुर्बलताओं तथा कमियों का ज्ञान भी होता है। डायरी के अभाव में हो सकता है कि व्यक्ति को इन सब पर विचार करने का समय न मिले, किन्तु डायरी रखने से यह

अनिवार्य हो जाता है कि व्यक्ति डायरी भरते समय अपने प्रत्येक कार्य पर पुन: चिन्तन करे और यदि कहीं गुण-दोष दिखलायी पड़ें, उनको भी चित्त के प्रकाश में ले आये। इसके अतिरिक्त डायरी रखने से स्मरण-शक्ति का विकास भी होता है और साधारण ज्ञान बढ़ता है। जो व्यक्ति सफलतापूर्वक डायरी भर सकता है, उसकी स्मरण-शक्ति अच्छी है और उसकी विवेक-शक्ति भी विकसित हो चुकी है, ऐसा जानना चाहिए।

मन के अन्दर एक चोर बैठा हुआ है जिसने आत्मज्ञान के मोती को चुराकर छिपा दिया है। वह तुम्हें अत्यन्त सन्ताप और कष्ट देता है, पद-पद पर भ्रम में डालता जा रहा है। वह चोर मन ही है। यदि उसके प्रति सावधान नहीं रहोगे तो वह तुम्हें अच्छी तरह लूट लेगा। उसके निराकरण और अस्तित्व-विच्छेद का एक साधन है, डायरी रखना। शायद तुम मुझ पर हँसोगे कि कैसी बेढंगी बात की जा रही है, मन जैसे सूक्ष्म तत्त्व पर विजय पाने के लिए कोरे कागज को काला करना! किन्तु इतना निवेदन करता हूँ कि कुछ समय तक इसको आजमा लो, यदि लाभ मालूम न हो तो मुझे अवश्य लिखना।

मित्रों! मजेदार जिन्दगी का क्या मतलब है? मजेदार जिन्दगी तो कुत्ते और बिल्ली की भी है, किन्तु जीवन महान् होना चाहिए, जो महामानव का ही हो सकता है। इसलिए जो भूल आज तक कर रहे थे, उनको भूल ही जाओ। प्रण कर लो कि कम-से-कम आज से जीवन के इस महान् कार्य की पूर्ति कर अपने उत्तरदायित्व का पालन करोगे।

यह ठीक है कि माता-पिता ने तुमको यह देह प्रदान किया है, इसका पालन-पोषण भी किया है, किन्तु डायरी का महत्त्व माता-पिता से अधिक है। यह इसलिए कि डायरी तुमको नित्यमुक्ति के मार्ग पर ले जाती है और तुम्हारे लिए सच्चे आनन्द का द्वार खोलती है। डायरी को गुरु कहा जाए तो एकदम सत्य होगा। डायरी से आँखें खुलती हैं, सान्त्वना, संतोष और शान्ति की प्राप्ति होती है। प्रति-सप्ताह अपनी डायरी के पन्नों को पलट कर देखो, अनुभव करोगे कि तुम अपने घर के अन्धकार को समझ पा रहे हो, जिसका अभी तक तुमको पता ही नहीं था। यदि अपने प्रतिक्षण की डायरी लिख सको तो जल्दी उन्नति कर सकोगे। मैं तो उस व्यक्ति को धन्यभाग्य समझता हूँ जो अपनी दैनन्दिनी रखता है। ऐसा व्यक्ति चोर को पकड़ चुका है, उसके हाथों में प्रकाश के लिए दियासलाई और बत्ती आ गयी है।

यदि डायरी रखने का अभ्यास होता गया तो तुम अपनी गलतियों का सुधार अवश्य कर सकते हो। गलतियों को सुधारने से साधना का प्रधान अंग सुन्दर बनता जाता है। डायरी के समान दूसरा उपयोगी गुरु सांसारिकों के लिए नहीं है। डायरी, यदि निरंतर रखी गयी तो तुमको समय का मूल्य बतलायेगी।

महीने के अन्त में जप, स्वाध्याय, आसन, प्राणायाम, निद्रा आदि का अलग-अलग योग निकालो तथा पिछले महीने के योग से उसका मिलान करो। तुरन्त पता चल जायेगा कि उन्नति कर रहे हो या अवनति के मार्ग पर जा रहे हो। इतना मालूम होते ही कि पिछले महीने की अपेक्षा अवनति ही हो रही है, मन में ग्लानि होगी, मन निश्चय करेगा कि अब के महीने में जरूर इस कमी की पूर्ति कर दी जायेगी। इस निश्चय का क्या फल होगा, कहने की आवश्यकता नहीं। यदि तुम सावधानी से डायरी भरते रहो तो डायरी रखने का मतलब सिद्ध होता जायेगा। डायरी का कायल एक क्षण भी व्यर्थ नहीं गँवाता। वह समय की कीमत पहचानता है और उसकी तेजी को भी।

डायरी में अपने दिन भर के कार्यों का ब्यौरा लिखते समय झूठी बात नहीं लिखनी चाहिए। डायरी को अपने विकास के लिए ही लिखा जाता है, यदि झूठी बातें भी डायरी में लिखी गयीं तो डायरी भरने का क्या लाभ? आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले साधक के लिए ठीक-ठीक भरी गयी डायरी तो जादू का काम करती है। अपने दोषों को स्वीकार कर लेना चाहिए, उन्हें पहचान लेना चाहिए और दुबारा न करने का निश्चय भी अवश्य करना चाहिए। हर सप्ताह पिछले सप्ताह के नोटों को देखो और अपनी प्रगति को आँको। प्रति-सप्ताह नहीं तो प्रति-मास अवश्य पिछले नोटों को दोहराना चाहिए। इससे तुमको पता चलेगा कि तुम उन्नति कर रहे हो या नहीं, साथ-ही-साथ मन को प्रेरणा मिलेगी, साहस मिलेगा और कहीं पर गलती हुई तो सुधार का आदेश भी मिलेगा।

डायरी में अपनी गलतियों, दोषों और दुर्गुणों का ब्यौरा लिखना न भूलो। शरमाने की कोई बात नहीं। विफलताओं को डायरी में अंकित कर दिया गया तो हानि के बजाय लाभ ही होता है। डायरी अपने उत्थान के लिए है। डायरी में जो कुछ लिखा जाता है उसका मन पर बड़ा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। यदि डायरी में अपने दुर्गुणों के ब्यौरे को अंकित कर दिया गया तो मन अवश्य चेतने का प्रयत्न करेगा।

आज तक कितने ही साल तुमने व्यर्थ गँवा दिये? गपशप, लम्बी-चौड़ी बातों और व्यर्थ के प्रपंचों में बहुमूल्य आयु गँवा दी। अब तो जरा उठो और साधना आरम्भ कर दो। आज तक इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए जो कुछ दु:ख तुमने मोल लिये, उनको आज यहीं छोड़ कर आगे चलो। भविष्य में नहीं, बल्कि आज ही और अभी साधना आरम्भ कर दो। जिस कल की प्रतीक्षा की जा रही है, वह कल कभी नहीं आने वाला—यह सिद्धान्त याद रखना चाहिए। सच्चे दिल से साधना आरम्भ कर दो। परमात्मा सदा तुम्हारी सहायता के लिए तैयार है।

सांसारिक वृत्तिपरायण लोगों का संग नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार के लोगों के साथ रहोगे, उन्हीं के चरित्र का तुम पर प्रतिबिम्ब पड़ेगा। सन्तों का संग सद्‌गुण और दुर्जनों का संग दुर्गुण देने वाला है। संसार में रहो, कोई हानि नहीं, किन्तु सांसारिकता से बाहर ही रहो। जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहते हुए भी जल से अप्रभावित ही रहता है, उसी प्रकार इस प्रपंच में रहते हुए प्रापंचिक वृत्ति में न रमो। जीवन का प्रत्येक क्षण आत्म-साधना के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए। चाहे तुम अपने घर में रहो या सड़क पर, कार्यालय में रहो या स्नानागार में—सर्वत्र और सब समय साधना करते रहना चाहिए।

तुम जो कुछ काम करते हो, भगवान को अर्पण करते रहो अर्थात् प्रत्येक कार्य ईश्वरार्पण-बुद्धि से ही किया जाना चाहिए। कार्य करते समय वृत्ति स्वार्थमयी नहीं रहनी चाहिए। धीरे-धीरे जब मन निर्मल और पवित्र होता जायेगा, तुम निष्काम कर्म के महत्त्व को समझ सकोगे। जब तक मन स्वार्थ और भोग-लिप्सा में फँसा हुआ है, तब तक निष्काम कर्मयोग के महत्त्व को जानना सम्भव नहीं है।

शिवरात्रि, जन्माष्टमी आदि अवसरों पर रात को जागरण करना चाहिए। लोग रात-भर ड्रामा, सिनेमा और मजलिसों में जागा करते हैं, पर साधना के दृष्टिकोण से जागना उनके लिए सम्भव नहीं। साल में तीन-चार बार जागरण अवश्य करना चाहिए। सारी रात-भर जाग कर साधना करनी चाहिए; जप, कीर्तन, ध्यान, स्वाध्याय, पूजा करनी चाहिए।

बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिए। धूम्रपान करना, चाय पीना, पान चबाना, दिन में सोना, उपन्यास पढ़ना, सिनेमा देखने जाना, अश्लील और अभद्र वाक्य बोलना, अधिक बातें करना, जुआ खेलना, ताश खेलना, मद्यपान करना, समाचार-पत्र पढ़ना,

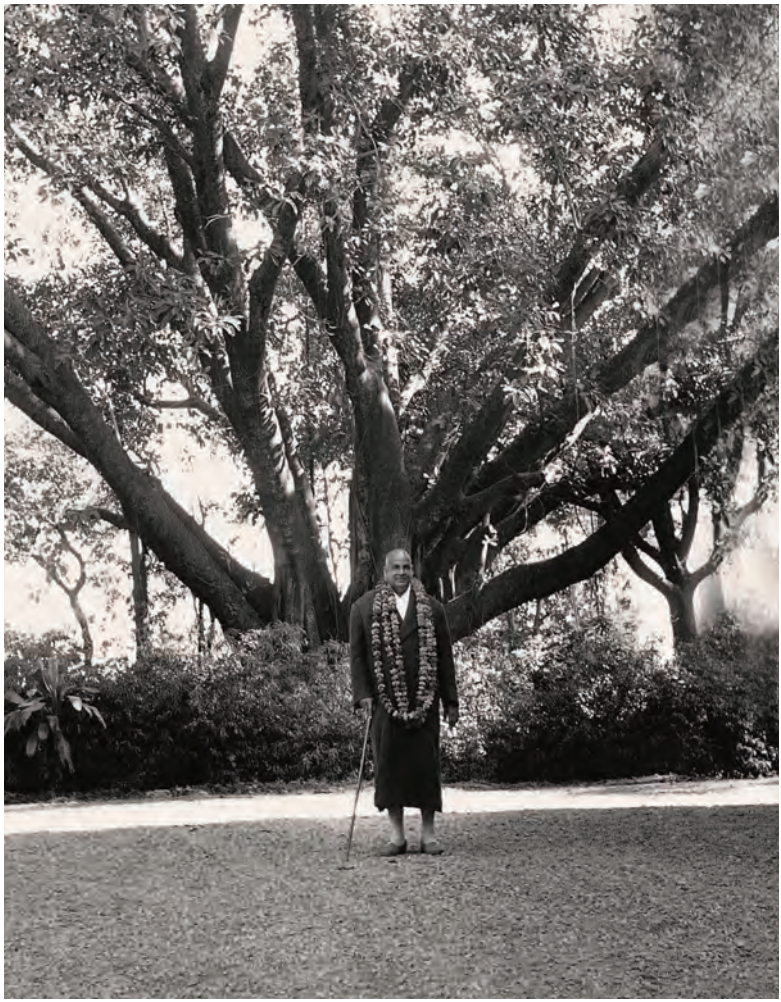

चुगली करना, शिकायत करना, निन्दा करना, कोकेन, अफीम आदि मादक द्रव्यों का सेवन करना—ऐसी बुरी आदतों का निराकरण अवश्य किया जाना चाहिए।

रोगियों की सेवा, समाज की सेवा अथवा अन्य किसी प्रकार की सेवा, अपनी योग्यता और शक्ति के अनुसार, आत्म-भाव या नारायण-भाव से की जानी चाहिए। यह निष्काम कर्मयोग है।

आगे डायरी का नमूना दिया जा रहा है। जो-जो प्रश्न पूछे गये हैं उनका जवाब हर दिन भरते जाओ। मनुष्य की आदत सदा छिछोरी रहती है, प्रपंच में उसे बड़ा आनन्द आता है, उसे बदलने के लिए साधना की आवश्यकता है, प्रयत्न दरकार है।

- कितने घण्टे सोये?
- सो कर कब उठे?
- कितनी माला जप किया?
- नाम-स्मरण कितनी देर किया?
- कितने प्राणायाम किये?
- आसन कितनी देर किये?
- एक आसन में कितनी देर तक ध्यान किया?
- क्या ध्यान में नियमित रहे?
- कितने श्लोक गीता के पढ़े या याद किये?
- सत्संग कितनी देर तक किया?
- कितने देर तक मौन रहे?
- कितनी देर तक निष्काम सेवा की?
- कितना दान किया?
- कितनी बार मंत्र लिखा?
- कितनी देर व्यायाम किया?
- कितनी बार असत्य बोला और क्या आत्म-दण्ड दिया?
- कितनी बार क्रोध आया और क्या आत्म-दण्ड दिया?
- कितनी देर तक व्यर्थ संग किया?
- कितनी बार ब्रह्मचर्य खण्डित हुआ?
- कितनी देर धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय किया?
- कितनी बार बुरी आदतों को दबाने में असफल रहे और क्या आत्म-दण्ड दिया?
- कितनी देर इष्ट-देवता पर ध्यान किया?
- कौन-से गुण का विकास कर रहे हो?
- कौन-सी बुरी आदत को हटाने का प्रयत्न कर रहे हो?
- कौन-सी इन्द्रिय सता रही है?
- कितने दिन व्रत और जागरण रखे?
- कब सोये?

यह तुम्हारी आध्यात्मिक दैनन्दिनी है। प्रश्नों का सच्चा उत्तर भरना चाहिए। सोच-समझ कर प्रश्नों का उत्तर लिखो। महीने के अंत में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का कुल योग निकालो और पूर्व के महीनों से तुलना करो। डायरी में क्रोध, असत्य-भाषण, आवेश, द्वेष, हिंसा आदि दुर्गुणों का स्पष्ट दिग्दर्शन करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिमास डायरी भर सकते हो और भरकर मेरे पास भेजो या स्वयं ही समालोचना करते रहो। तुम्हारी अवश्य ही आश्चर्यजनक गति से आध्यात्मिक प्रगति होगी।

मन का उपचार

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

हठयोग में एक अतिश्रेष्ठ क्रिया है जिसका नाम है 'शंखप्रक्षालन'। शंखप्रक्षालन के द्वारा शरीर के भीतर की अशुद्धियाँ, पुराने मल का संचय बहिष्कृत किया जाता है। शरीर मल-रहित होकर रोग-रहित हो जाता है। उसी तरह मन को निर्मल करने हेतु मन का शंखप्रक्षालन आवश्यक है। शारीरिक शंखप्रक्षालन में पहले कष्ट होता है, उन कष्टों से विजय प्राप्त करके ही स्वस्थ, रोगरहित, हल्के शरीर की प्राप्ति होती है। इसी तरह मन में वासनाओं की गन्दगी भरी पड़ी है। कुसंस्कारों, दुर्विचारों एवं वासनाओं का पुंज ही तो है यह मन। यह गन्दगी न्यूनाधिक रूप में सबके भीतर विद्यमान है। मनुष्य मन को जान नहीं पाता, इसकी गति गहन है। जिस तरह समुद्र के ऊपर लहरें उठती हैं जिन्हें हम सहज देखते हैं किन्तु समुद्र का गहरा विस्तार अदृष्ट होता है, उसी भांति मन की ऊपरी वासनाएँ तो समझ में आती हैं, किन्तु मन का अन्त:करण सामान्यत: अज्ञानावस्था में होता है। मन की गहराइयों में पूर्व-जन्मकृत संस्कार एवं माता-पिता के संस्कार भी मौजूद होते हैं। आप इसे जान भी कैसे सकेंगे?

इस हेतु योगशास्त्र में एक उत्तम क्रिया है, जिसे अन्तर्मौन कहा जाता है। शंखप्रक्षालन में नमक और पानी का जो कार्य है, वही कार्य अन्तर्मौन में मन्त्र-जप का है। मन्त्र-जप के साथ जीवन की गहराई से विचार उठते हैं। यह भला-बुरा, जैसा भी है, अच्छा है। विचारों का उठना भीतरी सफाई का लक्षण है। आपने अनुभव किया होगा कि जब हम सांसारिक कार्यों में व्यस्त रहते हैं तो मन में अन्य विचार नहीं उठते, किन्तु ज्योंही आप ध्यान में जाते हैं, मामूली-से-मामूली महत्त्वहीन विचार भी आकर विघ्न उपस्थित करते हैं। याद रखिये, साधना में विघ्नों का आना, मन में विक्षेपों का होना स्वाभाविक है। जप के समय जितना भी मन भटके, समझो कि परीक्षा में पास हो रहे हो, क्योंकि इस अवधि में तुम भीतर जाकर सफाई करते हो, सांसारिक कार्यों में वह बाहर ही अटक जाता है।

स्टोर रूम की सफाई के लिये आप जब मात्र दरवाजे पर खड़े होते हैं तो स्वच्छ-सा लगता है, लेकिन भीतर प्रवेश कर जब आप सफाई का कार्य शुरू करते हैं तो गन्दगी का ढेर आपके समक्ष खड़ा हो जाता है। यही सिद्धांत मन की सफाई पर भी लागू होता है। मन्त्र-जप के साथ मन में उठने वाले अच्छे-बुरे, सभी विचारों को द्रष्टा बनकर देखिये, जिस तरह सिनेमा में आप चित्रों को क्रमश: पर्दे पर देखते हैं। विचारों में रमना नहीं, रस नहीं लेना, एक न हो जाना, इतनी होशियारी आवश्यक है। हममें से अधिकांश लोग जप के समय निम्न विचारों को दबाते हैं, जो कि सरासर गलत है। विचारों को दबाने की कोशिश में कभी-कभी साधक पागल तक

हो जाता है। साधना में दबाव बिल्कुल नहीं, तभी मन में हल्कापन आएगा। आप चूहे, बिल्ली या कुत्ते को सहज दबा सकते हैं, किन्तु हाथी को काबू में करने के लिये उससे यथोचित व्यवहार करना होगा। मन में उठने वाली घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, क्लेश आदि भावनाओं को आप दबा नहीं सकते। ज्वालामुखी की भाँति विस्फोट के द्वारा वे बाहर निकलकर रहेंगी। यदि आपको कोई मानसिक कष्ट है तो उसका कारण पूर्वजन्मकृत पापों के अतिरिक्त समाज भी हो सकता है। अत: अपनी सही जागृति के लिये समाज के सम्मुख आपको मजबूत होना होगा। सशक्त बनकर समाज के परवाहों से दूर होना होगा। ऐसे ही व्यक्ति कालान्तर में समाज को नई दिशा दे सकते हैं। मनुष्य जब तक अपने विचार, सिद्धान्त एवं दर्शन को नहीं बदलेगा, वह अनेकों कष्टों का शिकार अवश्यमेव होगा।

शरीर का मूल मन है। शरीर निहित बीमारियाँ पहले मन के पथ से गुजरती हैं। उदाहरण के लिए, मधुमेह की बीमारी पैनक्रियाज़ ग्रन्थि के स्राव के बन्द होने से होती है। खून और पेशाब की जाँच के द्वारा इसकी पहचान की जाती है। मानव के मन में जब एक ही तरह के विचार उठते हैं, तब इससे सम्बन्धित मस्तिष्क स्थित नाड़ियों पर इसका प्रभाव पड़ता है। यह विचार उनके कार्यों को अवरुद्ध कर देता है, फलत: व्यक्ति मधुमेह की बीमारी का शिकार हो जाता है। एक और बड़ी बीमारी हृदय से सम्बन्धित होती है, इससे रक्तवाहिनी नली में चर्बी जम जाती है, जिससे खून रुक जाता है, दिल की धड़कन रुक जाती है, मनुष्य समाप्त हो जाता

है। कैंसर की बीमारी अनन्त महत्त्वाकांक्षाओं के कारण होती है। यदि हम अपने विचारों पर नियन्त्रण पा सकें तो बीमारियाँ हमारे निकट फटकने का साहस नहीं करेंगी। कई सदियों से मानसिक नियन्त्रण के प्रबल आधार, योग को गृहस्थों के लिये हानिकारक सिद्ध करके भय उत्पन्न कराया गया था। यही कारण है कि गृहस्थ आज इसे सहसा अपना लेने का साहस नहीं कर रहे हैं। सच में तो योग गृहस्थों की आवश्यकता है। लोग अब इसकी उपादेयता समझना प्रारम्भ किए हैं।

एक बार विदेश से भारत वापसी के समय लन्दन में एक 19 वर्षीय युवक से भेंट हुई। जहाज से वह भी भारत आ रहा था। मुझे तंग करने के लिये वह निकट में बैठकर सिगरेट-शराब आदि का सेवन करने लगा। उसकी अतिशयता पर मेरा कुछ कहने का विचार हुआ। इसके पहले कि उसे मैं कुछ कहूँ, उसी ने कहा, 'आप इन सब चीजों का सेवन क्यों नहीं करते?' मैंने कहा, 'हमें इन सबकी कभी इच्छा ही नहीं होती।' उसने आश्चर्य से पूछा, 'यह कैसे सम्भव है कि सभी सामान्य लोगों के लिये उपयोगी वस्तु आपके लिये आवश्यक न हो?' मैंने हँसते हुए कहा, 'भाई, यह सब मनोजय द्वारा सहज ही सम्भव हो जाता है, आश्चर्य और अविश्वास की बात ही क्या है इसमें?' सामान्य बातचीत से ज्ञात हुआ कि वह पेट की बीमारी से पीड़ित रहता है। मैंने उसे परामर्श दिया, 'यह पेट की बीमारी भी विचार संयम द्वारा दूर हो सकती है। मन को किसी एक विचार पर केन्द्रित करने का अभ्यास करो।' अब तो उसे मेरी बातों पर पूर्ण विश्वास हो गया और बम्बई आते तक वह मेरा शिष्य ही बन गया, उसका व्यवहार भी बड़ा शिष्ट हो गया।

आधुनिक मनोविज्ञान में मनोविश्लेषण उपचार की एक प्रक्रिया है जो फ्रॉयड द्वारा आविष्कृत है। इसमें रोगी को सुलाकर उसके भीतर उठने वाले विचारों एवं स्वप्नों को प्रकट किया जाता है, उसके विचारों को संयमित करके स्थिर किया जाता है, बीमारी इस उपचार से ठीक हो जाती है। हमारे पास मनोविश्लेषण की प्रक्रिया अन्तर्मौन एवं योगनिद्रा द्वारा सिखाई जाती है।

अन्त में एक गुप्त एवं विचित्र बात कहकर अपना भाषण समाप्त करूँगा। छ: महीने पहले की बात है, एक माँ अपने बदमाश, उच्छृंखल लड़के को काबू में लाने की विधि मुझसे पूछने आई। देर तक चिन्तन करने के बाद मुझे एक उपाय सूझा। मैंने उन्हें सुझाव दिया, 'जब बालक सोता हो, तब तुम उसके भ्रूमध्य पर त्राटक करो, और इसी अवधि में अनुकूल इच्छित सद्विचारों का संकल्प करो। किन्तु यह हो पूर्ण विश्वासपूर्वक।' कुछ दिनों तक लगातार करने के बाद रिपोर्ट मिली कि उसने अपने बालक पर शत-प्रतिशत विजय प्राप्त कर ली। बालक की सारी उच्छृंखलताएँ शिष्टता में परिणत हो गईं। इसलिए मैं तो दावे से कहूँगा कि यदि आप विश्वासपूर्वक शारीरिक बीमारियों एवं व्यावहारिक दोषों के निवारणार्थ अनुकूल मानसिक प्रयोग करें तो आपको आशातीत लाभ नि:संदेह प्राप्त होगा।

कर्मयोग का सिद्धान्त

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

प्रकृति का कर्म है हमें एक स्थूल शरीर प्रदान करना। जिस क्षण हम इस स्थूल शरीर में प्रवेश करते हैं, हम प्रकृति के अधिकार-क्षेत्र में आ जाते हैं। जिस क्षण हम नाम, रूप और गुण धारण करते हैं, हम प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। प्रकृति चेतना के विस्तार को अवरुद्ध करती है। इसलिए, चेतना के विषय में हमारा ज्ञान और अनुभव हमारी अभिव्यक्तियों और अनुभूतियों तक सीमित है। हमारे गुण और हमारे संस्कार, स्वभाव, मूल प्रवृत्तियाँ और इन्द्रियाँ हमें सर्वव्यापी चेतना का अनुभव नहीं करने देते।

हम सभी मन के निम्न, विषयासक्त स्तर पर ही अटके हैं। शायद ही कभी हम अपने आप को उच्च, विवेकशील मन के स्तर पर ला पाते हैं। एक गाँव में एक पण्डित रहा करते थे। संकट-विपत्ति के समय वे लोगों के घरों में जाकर उन्हें समझाया-बुझाया करते थे। एक दिन वे एक परिवार के यहाँ गए, जहाँ एक गाय की मृत्यु हुई थी, और उन्हें जीवन-मृत्यु के विषय पर बड़ा ही सुन्दर प्रवचन दिया। प्रवचन से परिवार-वालों को बहुत सांत्वना और शान्ति मिली। घर लौटने पर पण्डित जी ने अपनी पत्नी को रोते हुए पाया। पूछने पर मालूम चला कि उनकी बकरी मर गयी थी। पण्डित जी भी शोकाकुल हो रोने लगे। उधर से जा रहे एक राहगीर ने, जिसने पण्डित जी के सुबह के प्रवचन को सुना था, रुककर पूछा कि क्या बात हो गई। पण्डित जी ने सारी बात बता दी। राहगीर ने कहा, 'कुछ ही घण्टे पहले तो आप शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता पर कितना सुन्दर उपदेश दे रहे थे!' पण्डित जी ने कहा, 'उस समय गाय तो उसकी थी, पर अभी बकरी तो मेरी है न!'

यह कहानी इस बात को दर्शाती है कि जब कोई संकट हमारे सिर पर आ जाता है तब ज्ञान और विवेक के रहते हुए भी हम मन के निम्न स्तर पर आ जाते हैं। उच्चतर मन का अनुभव होने पर भी हम निम्न मन की चपेट में आ जाते हैं। प्राय: हमारी बहुत-सी मनपसंद चीजें हमारे लिए अनावश्यक होती हैं, वे मात्र हमारी संतुष्टि के लिए होती हैं। हम भली-भाँति जानते हैं कि जो हम कर रहे हैं वह सही नहीं है, लेकिन अपनी तुच्छ स्वार्थ-सिद्धि के लिए हम सभी व्यवस्थाओं, अनुशासनों, आचार-विचारों और नैतिकताओं को किनारे कर उस काम में जान-बूझ कर लग जाते हैं। ऐसा हमारे निम्न मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार के कारण होता है।

कर्मों की उत्पत्ति मन में होती है और उच्चतर मन से सम्बन्ध जोड़ने के लिए हमें पहले पूर्ण सजगता और समझदारी के साथ अपने निम्न मन की अभिव्यक्ति और आचरण से निपटना होगा। यह कैसे किया जाए?

स्वयम् को जानो योगोत्सव भारत योग यात्रा दिल्ली-2018
Know Yourself Yogotsav Bharat Yoga Yatra, Delhi - 2018
हमारे प्रेरक एवं सद्गुरु श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं
श्री स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती निवृत्त परमाचार्य बिहार योग विद्यालय, विश्व योग पीठ, मुंगेर, बिहार के
प्रेरणा एवं आशीर्वाद से योग विद्यालय के अधिकृत सन्यासियों द्वारा आयोजित।
Jointly Organized by Citize
Bharati, Munger, Bihar
Jawaharlal Nehru Stadium
New Delhi 13 - 15 April 2018
के नागरिकों एवं बिहार योग विद्यालय विश्व योगपीठ, बिहार योग भारती, मुंगेर, बिहार के संयुक्त तत्वावधान में आ
Organized by Citizens of Delhi, Bihar School of Yoga Vishwa Yogapeeth & Bihar Yoga Bharati, Munger,

बिराटनगरका नागरिक, बिजनेश एण्ड प्रोफेस्नल वोमैन बिराटनगर

तोड़ो और जोड़ो

अपने निम्न मन की सीमाओं से ऊपर उठो, अपने आप को उच्च मन में स्थापित करो ताकि मनस् की अभिव्यक्ति स्वार्थपरक नहीं, स्वार्थरहित हो। बुद्धि की अभिव्यक्ति आत्म-तुष्टि के लिए न हो, बल्कि वह हमें रचनात्मक ढंग से संसार में कार्य करने के लिए प्रवृत्त करे। चित्त की जो स्मृतियाँ हमें सम्बन्धों और आसक्तियों के दायरे में बाँधकर रखती हैं, उनसे भी हमें ऊपर उठना है। चित्त के उच्चतर आयाम में प्रवेश करने के लिए वैराग्य और अनासक्ति का विकास करो। अगर आसक्ति है तो इसका मतलब तुम चित्त के निम्न आयाम में हो, जहाँ तुम्हारा पूरा ध्यान विषय-भोग और विषय-सुख में ही केन्द्रित है। अनासक्त भाव के जागृत होने पर विषय-वस्तुएँ तो अपनी जगह बनी रहती हैं, लेकिन उनका आकर्षण समाप्त हो जाता है। यह सब कर पाने के लिए हमारा आन्तरिक वातावरण संतुलित होना चाहिए।

गर्मी के दिनों में तुम धूप में सिर्फ पाँच मिनट के लिए बैठ सकते हो, लेकिन जाड़े के दिनों में आराम से लम्बी अवधि तक बैठ सकते हो। सूर्य तो वही है, लेकिन एक मौसम में तुम देर तक धूप में रह सकते हो जबकि दूसरे मौसम में नहीं। शरद, ग्रीष्म, वसन्त आदि ऋतुएँ प्रकृति की विभिन्न मनोदशाएँ हैं। हर एक मौसम में तुम वातावरण में परिवर्तन देखते हो और अपने भीतर भी वैसा ही बदलाव पाते हो।

जिस प्रकार विभिन्न मौसम प्रकृति की विभिन्न मनोदशाएँ दर्शाते हैं, उसी प्रकार हमारी विभिन्न अभिव्यक्तियाँ और प्रतिक्रियाएँ हमारी आन्तरिक मनोदशाएँ दर्शाती हैं। कभी तुम गुस्से में होते हो तो कभी सौम्यावस्था में, कभी प्रसन्न तो कभी चिन्तामग्न। ये सभी व्यवहार हमारी मनोदशा से निर्देशित होते हैं। एक प्रसन्नचित्त व्यक्ति को सारी दुनिया में खुशहाली ही दिखलाई पड़ती है, जबकि एक दु:खी और हताश व्यक्ति के लिए चारों ओर निराशा ही छायी रहती है। जिन विषयों और वस्तुओं से जीवन में द्वन्द्व उत्पन्न होते हैं, लगाव पैदा होता है, उनके प्रति अनासक्ति विकसित करने से हम चित्त के एक उच्च स्तर पर आ जाते हैं, जहाँ हमारी स्मृति लोकोत्तर हो जाती है। जब स्मृतियाँ लौकिक होती हैं तब तुम भौतिक, वस्तुनिष्ठ चीजों के साथ तादात्म्य स्थापित करते हो और जब स्मृतियाँ लोकोत्तर होती हैं तब तुम आत्मनिष्ठ विषयों से जुड़ते हो।

पहले हमें निम्न मन की सभी अनुभूतियों के प्रति सजग हो जाना है और फिर शनै:-शनै: स्वार्थपरक प्रवृत्ति से ऊपर उठकर एक नि:स्वार्थ प्रवृत्ति को धारण करना है, अहंकार को क्षीण कर एक उच्च तत्त्व से जुड़ने का प्रयास करना है। चित्त, बुद्धि और अहंकार से परे यह उच्च तत्त्व कौन-सा है? यह है आत्मा। नि:स्वार्थ प्रवृत्ति का सम्बन्ध आत्मा से होता है।

वृत्तियों का दिशान्तरण

योग दर्शन का कहना है *'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'* अर्थात् योग चित्तवृत्तियों का निरोध करता है। यहाँ पर निरोध शब्द का प्रयोग किया गया है, अवरोध या विरोध शब्द का नहीं। निरोध का अर्थ होता है दिशान्तरण। चित्तवृत्तियों की व्याख्या प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति के रूप में की गई है। स्मृति चित्त का अंश है और साथ ही एक वृत्ति भी। निद्रा एक मूल-प्रवृत्ति है और एक व्यवहार भी। जब ये मानसिक वृत्तियाँ अन्तरात्मा की ओर दिशान्तरित की जाती हैं तब एक नई वृत्ति जन्म लेती है, जिसे ब्राह्मी वृत्ति कहते हैं।

यह मन की एक उच्चतर अवस्था है जिसमें मनुष्य जीवन का द्रष्टा बन जाता है और साथ ही एक उच्चतर प्रयोजन, परमार्थ से जुड़ जाता है। सामान्य व्यवहार और कर्म करते हुए भी वह सर्वदा उच्चतर प्रयोजन के प्रति सजग रहता है और उसी के सम्बन्ध में चिन्तन करता है। मन, जो अब तक इन्द्रिय-विषयों से जुड़ा था, अब एक उच्चतर लक्ष्य के साथ जुड़ जाता है। मनुष्य भौतिक जीवन की सीमाओं को पार कर जाता है और उच्च चेतना में स्थापित हो जाता है जहाँ वह जीवन की, आत्मा की, परम तत्त्व की महानता और व्यापकता का अनुभव करता है।

हमारे ऋषि-मुनि गहन चिन्तन-मनन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संसार में सभी मनुष्यों को अपरा और परा, दोनों पुरुषार्थों को सिद्ध करना है। इसलिए

उन्होंने सलाह दी कि अपने जीवन का आधा भाग तुम अर्थ और काम विषयक पुरुषार्थों की पूर्ति में लगाओ और जीवन का शेष भाग धर्म और मोक्ष पुरुषार्थों की पूर्ति में। पहले दो पुरुषार्थ अपने हित, अपने स्वार्थ के लिए होते हैं और अंतिम दो पुरुषार्थ जीवन में उच्चतर अनुभव प्राप्त करने के लिए।

इच्छाओं पर नियंत्रण

हमारे दु:ख और कष्ट का कारण मात्र हमारी इच्छाएँ नहीं। इच्छाएँ तो सभी जीवों में होती हैं। लेकिन मनुष्य को इस बात की जानकारी होती है कि उसकी इच्छाएँ हैं, कामनाएँ हैं, आकांक्षाएँ हैं। पशु-पक्षियों में यह ज्ञान नहीं होता। हमें अपनी इच्छाओं का ज्ञान होता है और जब इन इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती तो यह अभाव हमें खलता है। इसलिए इच्छाएँ हमारे जीवन में एक प्रबल शक्ति बन जाती हैं। मन तक पहुँचने के लिए हमें पहले अपनी इच्छाओं को व्यवस्थित करना होगा। यह आवश्यक नहीं कि उन्हें जड़ से ही समाप्त कर दिया जाए, लेकिन जिस तरह हम एक पेड़ की निश्चित ऊँचाई बनाए रखने के लिए उसकी काट-छाँट करते रहते हैं, उसी तरह हमें अपनी इच्छाओं को भी नियंत्रण में रखना है ताकि हम अपने जीवन के सभी जरूरी काम-काज ठीक ढंग से करते रहें और अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते रहें।

इच्छाएँ और कामनाएँ सभी में होती हैं, संन्यासियों में भी। अन्तर इतना ही है कि संन्यासी अपनी कामनाओं का साक्षी बनने का प्रयास करता है, जबकि गृहस्थ इच्छाओं में ही आकण्ठ डूब जाता है। यह मनोवृत्ति का, भावना का, दृष्टिकोण का बदलाव मात्र है। इसलिए उन इच्छाओं को काट-छाँटकर हटा दो जो जीवन के लिए लाभदायक नहीं हैं, और उन्हीं को बनाए रखो जो लाभदायक हैं। यही तरीका है अपने मन को स्वार्थ से नि:स्वार्थ की ओर दिशान्तरित करने का।

प्रत्याहार एवं धारणा

विचारों, भावनाओं एवं मन की अन्य अभिव्यक्तियों को व्यवस्थित करने के लिए प्रत्याहार एवं धारणा का अभ्यास आवश्यक है। प्रत्याहार का अर्थ क्या है? जो कुछ तुम अपने मन में भरते जाते हो अर्थात् सभी विचारों; सभी महत्त्वाकांक्षाओं; सभी इच्छाओं; लाभ-हानि, सफलता-विफलता के साथ सभी सम्बन्धों, उन सबकी समुचित कटाई-छँटाई करते जाना।

जब तुम्हें टिफिन में भोजन मिलता है, तुम आवश्यकतानुसार भोजन अपनी थाली में निकाल लेते हो और बचे भाग को टिफिन में बन्द करके वापस कर देते हो। इसी सिद्धान्त को हमें प्रत्याहार के सन्दर्भ में समझना और लागू करना है, ताकि हम अपने विचारों, भावनाओं और मनोवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए अनुपयोगी

चीजों को छाँट कर हटा दें। प्रत्याहार का यह पहला अर्थ है। दूसरा अर्थ है मन की बहिर्मुखी प्रवृत्तियों को शान्त करना और सजगता को अन्तर्मुखी बनाना।

इस प्रकार प्रत्याहार का अभिप्राय कर्मों के प्रति सजग होने से है। जो कर्म उपयोगी हैं उन्हें धारण करना है और जो अनुपयोगी हैं उन्हें निकाल फेंकना है। अपने जीवन के कूड़े-करकट को निकालकर फेंकते रहो। प्रत्याहार से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की सफाई होती है और फिर धारणा द्वारा वे एकाग्र होते हैं। धारणा वह अवस्था है जहाँ मन की विक्षिप्त ऊर्जाएँ किसी एक बिन्दु, विचार या भावना पर केन्द्रित हो जाती हैं। वहाँ चंचलता का अनुभव नहीं होता, बल्कि स्थिरता और शांति रहती है। मन के कर्मों को व्यवस्थित करने के लिए, बुद्धि को सही दिशा प्रदान करने के लिए प्रत्याहार और धारणा के अभ्यास आवश्यक हैं। जहाँ तक ध्यान की बात है, यह आन्तरिक अनुभूति की एक ऐसी अवस्था है जहाँ शरीर की चेतना नहीं रहती, जहाँ 'मैं' की सजगता विलुप्त हो जाती है। धारणा की सहायता से हम ध्यान की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं और अपनी बुद्धि को, जो अभी भौतिक जीवन में रत है, अपनी आत्मा से जोड़ सकते हैं।

चित्त शुद्धि

मनस् को व्यवस्थित करने के लिए प्रत्याहार और धारणा का उपयोग करो; बुद्धि को व्यवस्थित करने के लिए धारणा और ध्यान का प्रयोग करो, तथा चित्त के लिए चित्त शुद्धि का अभ्यास करो। जिस प्रकार से कम्प्यूटर में जानकारियाँ इलेक्ट्रॉनिक

रूप में रखी रहती हैं, उसी तरह जीवन की जानकारियाँ चित्त में स्मृतियों के रूप में रखी जाती हैं। ये स्मृतियाँ मात्र इसी जीवन से सम्बन्धित नहीं होतीं, बल्कि कई पूर्वजन्मों से सम्बन्धित होती हैं। लेकिन प्रकृति ने इन स्मृतियों पर ताला लगा रखा है, नहीं तो गड़बड़ी और अव्यवस्था हो जाएगी। जो लोग अपने आप को अपरा से परा अवस्था में ले जा सके हैं, वे ही अपने पूर्वजन्मों की जानकारियाँ प्राप्त कर सके हैं। उदाहरण के तौर पर महात्मा बुद्ध। उन्हें अपने अनेक पूर्वजन्मों का वृत्तान्त ज्ञात था, जिन्हें आज हम जातक कथाओं के नाम से जानते हैं। लेकिन एक सामान्य व्यक्ति के लिए इसी जीवन की स्मृतियाँ उपलब्ध रहती हैं।

हमारी स्मृतियों पर गुणों का असर पड़ता है। जब ये स्मृतियाँ उभरती हैं, तब ये हमारे पूर्वजन्मों की मानसिकता से रंगी होती हैं, और ये हमें अनायास नीचे की ओर खींचती हैं। इसलिए चित्त की शुद्धि जरूरी है ताकि उभरती स्मृतियों के नकारात्मक तत्त्वों की पहचान हो सके और उन्हें रूपान्तरित किया जा सके। हमें उन स्मृतियों, अनुभवों, संस्कारों और जानकारियों को आगे लाना है जो हमारे विकास में सहायक हो सकते हैं।

मंत्र, यंत्र और भक्ति के साधन

चित्त तक पहुँचने का रास्ता मंत्र, यंत्र और भक्ति से होकर जाता है। भक्ति स्थूल भावनाओं का परिष्कार करती है और उनमें आध्यात्मिकता का रंग घोलती है, मंत्र चित्त के लिए झाड़ू का काम करते हैं, और यंत्र चित्त की छिपी हुई चीजों को बाहर निकालते हैं। जिस प्रकार हम एक टॉर्च से अंधेरे में रास्ता देख सकते हैं, उसी प्रकार यंत्र हमें चित्त के वास्तविक स्वरूप का दर्शन कराने में सहायक होते हैं। जब हम किसी उपयुक्त यंत्र पर एकाग्रता का अभ्यास करते हैं तब मन पुनर्संयोजित होता है। इससे चित्त की शुद्धि होती है। चित्त शुद्धि का प्रथम संकेत है मन का शान्त होना और उसकी ऊर्जा में वृद्धि होना। मंत्रों से यही परिणाम प्राप्त होता है। इसके बाद चित्त की गहराइयों में प्रवेश करने के लिए किसी यंत्र पर एकाग्रता का अभ्यास किया जा सकता है। और फिर भक्ति द्वारा चित्त की विभिन्न अभिव्यक्तियों को सुव्यवस्थित और सुसंगठित कर उन्हें ईश्वराभिमुख करना चाहिए। इस प्रकार हम चित्त को परम चेतना से जोड़ सकते हैं, उसे अपरा से परा अवस्था में स्थापित कर सकते हैं।

भक्ति का अभ्यास अपनी रुचि अनुसार ईश्वर के प्रति, गुरु के प्रति या मानवता के प्रति किया जा सकता है। भक्ति की उपलब्धि क्या है? श्रीमद्भगवद् गीता में कहा गया है–

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥12.13॥

भक्त किसी से द्वेष नहीं करता, सभी के प्रति मित्रता और करुणा का भाव रखता है, आसक्ति और अहंकार से मुक्त रहता है, दु:ख और सुख दोनों में समभाव रखता है और क्षमाशील होता है।

मंदिर में घण्टी बजाना या वहाँ पर कुछ समय ईश्वर-ध्यान में व्यतीत करना ही भक्ति नहीं। यह भक्ति का केवल एक पक्ष है। भक्ति मन की ऐसी विशुद्ध अवस्था है जिसमें द्वैत भाव का पूर्णतया अतिक्रमण हो जाता है। तुम अपने आप को हर तत्त्व में, हर प्राणी में देख सकते हो। किसी के प्रति तुम्हारी आसक्ति नहीं होती, तुम सभी बन्धनों से स्वतंत्र हो जाते हो। तुम सभी के हितैषी बन जाते हो। तुम्हारी करुणा समस्त जगत् की ओर प्रवाहित होती है, सिर्फ सगे-सम्बन्धियों के प्रति नहीं। इसलिए भक्ति को भगवान की सिर्फ पूजा-अर्चना मत समझो, यह तुम्हारे जीवन को बदलने की विधि है। द्वैत भाव से ऊपर उठकर सारे संसार की एकता को समझने की विधि है। चित्त शुद्धि के यही आधार हैं।

विनम्रता की शक्ति

अहंकार का शमन हम विनम्रता से कर सकते हैं। विनम्रता को कमजोरी मत समझो, यह एक अति प्रबल शक्ति है। अहंकार का शमन उससे अधिक बलशाली ऊर्जा ही कर सकती है। विनम्रता ही वह शक्ति है जो हमें अहंकार-जनित कर्मों के परिणामों से मुक्त करा सकती है।

कर्मयोग मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार को पुनर्गठित करने का साधन है। इन चारों के संतुलित हो जाने पर गुण भी संतुलन की अवस्था प्राप्त कर लेते हैं और मूल प्रवृत्तियाँ, संस्कार, स्वभाव और इन्द्रिय-आसक्तियाँ स्वत: शान्त हो जाती हैं।

सभी कर्म, चाहे वे संसार और उसके विषयों से जुड़े हों या जीवन के किसी उच्च प्रयोजन और ईश्वर से, मन में ही उत्पन्न होते हैं। योग का अर्थ है जुड़ना, समीप आकर एक हो जाना। जब कर्मों में समत्व की अवस्था आती है और उनकी संतुलित अभिव्यक्ति होती है तब यह कर्मयोग कहलाता है। जब तक अशान्ति और बिखराव रहता है, मात्र कर्म होता है। अब तक तो सभी लोग अपने मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार के वशीभूत होकर कर्म करते आए हैं। अहंकार कहता है, 'वह व्यक्ति तुम्हें अपमानित कर रहा है। उसे दो थप्पड़ लगा दो।' और हम आगे बढ़कर उसे दो थप्पड़ जड़ देते हैं। बुद्धि कहती है, 'वह कितनी सुन्दर कार है, तुम उसे खरीद लोगे तो सारे शहर में लोग तुम्हें जान जाएँगे।' और हम जाकर कार खरीद लेते हैं। जिन कर्मों को तुम संसार से आसक्ति के कारण करते हो वे अपरा अवस्था के कर्म होते हैं। अगर तुम कर्मों से मुक्त होकर समत्व की अवस्था प्राप्त करना चाहते हो, भौतिक एवं आध्यात्मिक स्तरों का समन्वय चाहते हो तो तुम्हें परा अवस्था में आना होगा। यही कर्मयोग का सिद्धान्त है।

तंत्रशास्त्र द्वारा मन का विस्तार

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

तंत्र का प्रयोजन इस सारगर्भित शब्द में ही निहित है। इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के दो धातुओं से हुई है– *तनोति* अर्थात् तानना या विस्तार करना और *त्रायते* अर्थात् मुक्त करना। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तंत्र मन का विस्तार करने और अन्तर्निहित प्रसुप्त ऊर्जा को मुक्त करने की विधि है। तंत्र को समझने से पहले हमें यह जानना होगा कि वास्तव में मन के विस्तार और ऊर्जा के मुक्त होने से क्या अभिप्राय है।

आन्तरिक और बाह्य जगत् से सम्बद्ध हमारी अनुभूतियों का दायरा अत्यन्त सीमित होता है। हम अपनी कर्मेन्द्रियों के माध्यम से केवल देख सकते हैं, सुन सकते हैं, सूंघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं या स्वाद पा सकते हैं। यदि हमारी कोई इन्द्रिय बाधित हो जाती है तो उस इन्द्रिय से सम्बद्ध अनुभव तथा ज्ञान भी सीमित और बाधित हो जाते हैं। इस तरह हमारा भौतिक ज्ञान पूर्णत: इन्द्रियों पर निर्भर करता है। यह हमारे जीवन को सीमित करने वाला पक्ष है क्योंकि इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान देश, काल और वस्तु की सीमाओं में बँधा होता है।

देश, काल और वस्तु वैचारिक रूप में मानव मन में स्थित होते हैं। यदि मनुष्य का मन न हो तो देश या काल या वस्तु का कोई अस्तित्व नहीं होता और इसके विपरीत, यदि ये तीनों न हों तो मानव मन कहाँ? मन के ये तीन वैचारिक रूप सीमाबद्ध हैं और इन्हें असीमित या अक्षय ज्ञान का स्रोत नहीं माना जा सकता। जब तक हम इन्द्रियों और मन के माध्यम से कार्य करते रहेंगे तब तक इन सीमाओं को पार नहीं कर पायेंगे।

उदाहरण के लिए, किसी पुष्प के मनमोहक सौंदर्य को देखने के लिए यह आवश्यक है कि पुष्प आपकी खुली आँखों के सामने हो, चन्दन या चमेली की सुगंध लेने के लिए यह आवश्यक है कि वे नाक के आसपास हों, बर्फी की मिठास या मिर्च की तिक्तता का स्वाद पाने के लिए उन्हें खाना पड़ेगा। इस प्रकार के अनुभव को वस्तुपरक कहते हैं क्योंकि ये वस्तु की उपस्थिति तथा इन्द्रियों और मन पर निर्भर करते हैं।

अनुभूतियों की अनेक श्रेणियाँ हैं जिनमें आप बन्द आँखों से देख सकते हैं, किसी व्यंजन के न होने पर भी उसका स्वाद पा सकते हैं, बिना किसी वाद्य यंत्र की ध्वनि के संगीत सुन सकते हैं। यह पूर्णत: व्यक्तिपरक अनुभूति है और मन के सीमित विचारों से पूरी तरह स्वतंत्र। व्यक्तिपरक अनुभूति के माध्यम से प्राप्त ज्ञान वस्तुपरक अनुभूति की अपेक्षा कहीं अधिक यथार्थपूर्ण तथा सुस्पष्ट होता है क्योंकि यह मन के विस्तार का परिणाम होता है।

मन का विस्तार वह घटना है जिसके फलस्वरूप मनुष्य इन्द्रियों तथा देश, काल एवं वस्तु द्वारा सीमित मन के क्षेत्र के परे जाकर अनुभव प्राप्त कर सकता है। आप अतीत या भविष्य में जा सकते हैं और उन स्थानों पर हो रही घटनाओं के विषय में जान सकते हैं जहाँ आप सशरीर उपस्थित नहीं हैं। इसे मन का विस्तार कहा जाता है, लेकिन यह तब तक सम्भव नहीं होता जब तक आप इन्द्रियगत अनुभवों से बँधे रहते हैं। इन्द्रियों तथा अहंकार से संचालित होने वाला मन सभी अनुभवों को राग और द्वेष के आधार पर श्रेणीबद्ध कर देता है। राग और द्वेष का पोषण भी मन ही स्वयं करता है। मन के द्वारा किया जाने वाला यह आरोपण किसी भी अनुभव से प्राप्त ज्ञान को विकृत कर देता है और शुद्ध, परिष्कृत ज्ञान को विकसित होने का अवसर नहीं देता।

विस्तृत मन के द्वारा प्राप्त ज्ञान धीरे-धीरे विकसित होता है और अन्ततः अन्तर्जात ज्ञान के रूप में चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है जिसे शाश्वत, पूर्ण तथा यथार्थ ज्ञान कहा गया है। मन का यह विस्तार एक रात में नहीं हो जाता। साधक अनेक प्रकार के अनुभवों से होता हुआ आगे बढ़ता है, जिनमें कुछ मध्यम, कुछ तीव्र, कुछ प्रिय और कुछ अप्रिय भी होते हैं। यह एक क्रमिक विकास है जिसकी परिणति ब्रह्मज्ञान में होती है।

एक बच्चा एक रात में वयस्क नहीं बन जाता, रूपान्तरण क्रमशः होता है। बचपन और वयस्कता के बीच की सीमा रेखा इतनी सूक्ष्म है कि यह नहीं बताया जा सकता कि एक कहाँ समाप्त हुआ और दूसरा कहाँ आरम्भ हुआ। इसी प्रकार मानव चेतना निरन्तर विकसित होती रहती है। मन विस्तार करता हुआ नयी सीमाओं को लाँघता जाता है। रूपान्तरण हो रहा है किन्तु उसकी गति क्रमिक है और परिवर्तन सूक्ष्म।

मन के विकास को गति प्रदान करने और अपने रूपान्तरण को संचालित करने के लिए तंत्र एवं योग के अभ्यासों को अपनाना होगा। इन अभ्यासों की रचना ऊर्जा को पदार्थ से मुक्त करने की क्रिया को तीव्र करने और विशुद्ध अन्तर्जात चेतना को, जो समस्त ज्ञान का स्रोत है, प्रकट करने के लिए की गयी है।

तंत्र का उद्देश्य

दैनिक जीवन में हम जिस मन का उपयोग करते हैं वह इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करता है। किन्तु यदि हम अपनी इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर दें और मन को अन्दर की ओर मोड़ दें तो यह स्वयं को आन्तरिक अनुभव तथा विस्तृत मन के द्वारा प्रकट करता है। इस प्रकार पदार्थ ऊर्जा से वियुक्त हो जाता है, जिसके फलस्वरूप शक्ति स्वतन्त्र हो जाती है और उसके बाद शिव अर्थात् चेतन तत्त्व के साथ संयुक्त होकर समरूप सजगता उत्पन्न करती है।

जिस प्रकार सागर की ओर नदी का प्रवाह अनेक सीमाओं और बाधाओं को तोड़ डालता है, उसी प्रकार सीमित मन विस्तीर्ण होकर ब्रह्माण्डीय या अनन्त मन में समा जाता है और इस प्रकार सत्य को ग्रहण करने वाला तथा उसे संप्रेषित करने वाला बन जाता है। जब ऐसा होता है तब परिणामस्वरूप ऊर्जा का विस्फोट होता है और अन्तर्निहित चेतना पदार्थ से विमुक्त हो जाती है। इसकी तुलना कुण्डलिनी जागृति के अनुभव से की जा सकती है और सदा से तंत्र का यही उद्देश्य रहा है।

अन्य दर्शनों का भी यही लक्ष्य था, हालांकि उनके मार्ग भिन्न थे। वेदान्त दर्शन में ब्रह्म या अविभाज्य, एकरूप, सर्वव्यापी चेतना की अवधारणा है। ब्रह्म शब्द की उत्पत्ति बृंह् धातु से हुई है जिसका अर्थ है विस्तार होना, इसलिए इसे विस्तरणशील चेतना के रूप में समझा जा सकता है। उच्चतम ज्ञान के लिए इस

ब्राह्मी सजगता का महत्त्व है जो हममें से प्रत्येक में विद्यमान है। यह अद्वैत के रूप में स्थित है जिसमें विलीन होने के लिए हम निरन्तर प्रयासरत हैं।

तंत्र में इस अवधारणा को शिव तत्त्व के रूप में प्रतिपादित किया गया है जो हममें से प्रत्येक में एक मूक साक्षी के रूप में स्थित है। चाहे वेदान्त के ब्रह्म हों या सांख्य दर्शन के पुरुष या तंत्र के शिव, मूल रूप से यह एक ही अवधारणा है। हालांकि तंत्र और अन्य दर्शनों में यह अंतर है कि वे साधक के जीवन पर अनेक प्रकार के निषेध लगा देते हैं और नियमों के कठोरतापूर्वक पालन किये जाने की अपेक्षा करते हैं, जबकि तंत्र प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्र विकास की छूट देता है, भले ही वह विकास के किसी भी स्तर पर हो। तंत्र का कहना है कि आप भोगवादी हों या अध्यात्मवादी, आस्तिक हों या नास्तिक, बलशाली हों या दुर्बल, धनाढ्य हों या दरिद्र–आपके लिए एक विशेष मार्ग है जिसे आपको ढूँढना है।

यही तंत्र का वास्तविक उद्देश्य है, गुह्य वासना या काला जादू या सिद्धियों की प्राप्ति या स्वेच्छाचारी जीवन नहीं। ये कभी भी तंत्र के लक्ष्य नहीं रहे हैं। तंत्र की इस ढंग से विकृत व्याख्या की गयी होगी, लेकिन वह विवेचना का बिल्कुल भिन्न विषय है।

तंत्र–मन को मुक्त करने का एक उदार मार्ग

समय-समय पर तांत्रिक इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न विधियों एवं मार्गों के साथ प्रयोग करते रहे हैं। उनका मानना था कि सभी व्यक्ति एक ही मार्ग पर नहीं चल सकते, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति क्रमिक विकास के भिन्न स्तर पर होता है। प्राय: कहा भी जाता है, 'एक व्यक्ति का भोजन किसी अन्य व्यक्ति के लिए विष हो सकता है।' तांत्रिकों ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए आध्यात्मिक मार्ग की आवश्यकता को समझा था, वह व्यक्ति घोर विषयासक्त हो, गम्भीर दार्शनिक हो या एक साधनारत योगी हो।

वे प्राय: ऐसी विधियों के साथ प्रयोग करते थे जो सामान्य दृष्टि से अत्यन्त भयावह, अश्लील या कामुक प्रतीत होती थीं। इन अभ्यासों को वीभत्स माना जाता था क्योंकि उनमें एक नग्न स्त्री या एक शव के निकट बैठकर ध्यान करना और इसी प्रकार के अन्य उत्तेजित करने वाले अभ्यास सम्मिलित होते थे। इन्हीं कारणों से अनेक लोगों ने तंत्र का विरोध किया, इसकी आलोचना की और कहा कि यह भोग-वासना का एक बहाना है तथा इसमें किसी भी प्रकार का आध्यात्मिक अनुभव नहीं होता है। हालांकि तांत्रिकों की अन्तर्जात निष्ठा और दृढ़ता ने कुछ और ही प्रमाणित किया। यदि वह असंयमित वासना, मदिरा और मादक पदार्थों के साथ प्रयोग करता है तो उसकी परख इन क्रियाओं के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी मानसिक सजगता, मनोवृत्ति और इन क्रियाओं के उद्देश्य के आधार पर

की जानी चाहिए। यदि वह प्रेतात्माओं का आवाहन करता है और ऐसे अनुष्ठान करता है जिसे सामान्य रूप से 'काला जादू' कहा जाता है, तो हमें उसके इन कृत्यों के आधार पर नहीं, बल्कि इन सब के पीछे उसकी मंशा के आधार पर उसकी आलोचना करनी चाहिए।

एक तांत्रिक और साधारण कामुक व्यक्ति के अभ्यास में यही महत्त्वपूर्ण अन्तर है। कामुक व्यक्ति केवल कामेच्छाओं की पूर्ति और भौतिक उपलब्धि के लिए उन अभ्यासों को करता है, जबकि एक तांत्रिक क्रमिक ढंग से अपने अन्दर की शक्तियों का विस्फोट करता है। वासना, भय, घृणा, प्रेम, क्रोध इत्यादि वे शक्तियाँ हैं जिनका वह सामना करता है। यदि इन शक्तियों को समुचित ढंग से नियन्त्रित कर लिया जाए तो अनेक प्रकार की उच्चतर अनुभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। ध्यान के दौरान यदि एकाग्रता कायम रखना सम्भव हो तो वे दृश्यों, स्वप्नों, विभिन्न प्रकार की ध्वनियों, स्पष्ट आवाजों, विभिन्न प्रकार के संगीत और यहाँ तक कि वस्तुओं, पशुओं और मनुष्यों के रूप में भी मूर्त हो उठती हैं।

तांत्रिक का कौशल इसमें है कि वह निर्भीक और दृढ़ बना रहे। वह अनुभवों से अभिभूत नहीं हो, न ही भय के वशीभूत हो। यदि दुर्बल मानसिकता, असन्तुलित भावनाओं और विचलित मन वाला व्यक्ति इस प्रकार के अभ्यास करता है तो उसके मन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। वह घोर विषाद में डूब सकता है, यहाँ तक कि पागल भी हो सकता है।

भय और वासना क्या हैं? ये केवल ऊर्जाएँ हैं, शक्तियाँ हैं। दैनिक जीवन में होने वाले भावनात्मक अनुभव किसी व्यक्ति को पागल कर देने के लिए पर्याप्त हैं। यदि सन्तुलन कायम नहीं रखा जा सका तो व्यक्ति हत्या, बलात्कार और अन्य अपराध कर बैठता है। यदि आपके मन को आपके अन्दर छिपे गहरे भय और वासना के भयंकर आघात का सामना करना पड़े तो क्या होगा? क्या आप उसे सँभाल पायेंगे? एक तांत्रिक अपने अचेतन से अनुभवों का विस्फोट करने में सक्षम होता है। वह इन आन्तरिक शक्तियों को नियन्त्रित कर महत्तर एवं सूक्ष्म शक्तियों में रूपान्तरित करने में निपुण होता है जिन्हें वह अपनी इच्छा से निर्दिष्ट कर सकता है।

तंत्र के विकास-क्रम में यह पाया गया कि इन अभ्यासों में से अनेक के परिणामस्वरूप मन के अज्ञात आयामों से अद्भुत अनुभव प्राप्त हुए, जिनका सामना करने में एक औसत व्यक्ति सक्षम नहीं था। इसलिए तांत्रिकों ने ऐसे अभ्यासों का विकास किया जिसके द्वारा साधक सहजतापूर्वक अपनी क्षमता के अनुसार धीरे-धीरे क्रमिक अनुभव प्राप्त कर सके। उग्र अभ्यासों को उनके लिए छोड़ दिया गया जो शक्तिशाली आन्तरिक अनुभवों का साहस और धैर्य के साथ सामना कर सकें। जो सरल विधियाँ उन्नत अभ्यासों के लिए आधार तैयार करती हैं, उनमें हठ योग, क्रिया योग, जप और तत्त्व शुद्धि सम्मिलित हैं।

सत्यम् वाणी

एक बात याद रखनी चाहिए, मनुष्य हाथ-पैर बहुत मारता है, मगर उसे मिलेगा वही जो उसके भाग्य में होगा। पालक, कितना भी बदलना चाहे, वह पालक ही रहेगी। मनुष्य के साथ भी ऐसा ही है। हर एक का अपना भाग्य होता है, व्यक्ति थोड़ा भी इधर-से-उधर नहीं कर सकता है, चाहे कितना ही पुरुषार्थ करे। इसलिये मनुष्य को सांसारिक चिन्तन ज्यादा नहीं करना चाहिये। पैसे के बारे में, मोह-माया के बारे में ज्यादा चिन्तन नहीं करना चाहिये, मगर यह होता है। इसलिये इससे निपटने के लिये खाली समय में अच्छा साहित्य पढ़ना चाहिये, संत-महात्माओं की किताबें पढ़नी चाहिये, जिसको स्वाध्याय कहते हैं। एक-दो घण्टा समय निकाल लिया और चाहे रामायण हो या गीता हो, बहुत-सी ऐसी आध्यात्मिक पुस्तकें हैं जिनका अध्ययन कर सकते हो। मेरे कहने का मतलब यही कि मन का स्तर ऊँचा रहना चाहिए, मन योग में स्थित रहना चाहिए। पर वास्तव में हमलोगों के मन का स्तर क्या रहता है? हमेशा चिन्ता लगी रहती है, बेटी की शादी करनी है, लड़का अच्छा मिलेगा या नहीं, क्या करेंगे, कैसे करेंगे, यही सब न मन में लगा रहता है।

स्वामीजी, मन स्वस्थ नहीं रहता।

मन स्वस्थ होगा भी नहीं। आप कहते हैं मन स्वस्थ होगा तो तन स्वस्थ होगा, मगर हम कहते हैं कि सबसे पहली चीज है मनुष्य को अपनी पूरी गाड़ी की ओवरहॉलिंग करनी पड़ेगी। जैसे आप अपनी गाड़ी को गैरेज में भेजते हैं, वहाँ उसकी पूरी

ओवरहॉलिंग होती है, अगर नहीं करेंगे तो गाड़ी ठीक से नहीं चलेगी। इसी तरह से अगर आपको पता चले शरीर में क्लेश है, मन में चिन्ता है तब आपको जानना चाहिये कि आपकी गाड़ी में खराबी है, उसकी ओवरहॉलिंग होनी चाहिये। इसके लिए संत-महात्माओं ने जो बताया है, संतों का जो ज्ञान भरा साहित्य है, उसे पढ़ना चाहिए। जिस साहित्य में संसार की बातें कम, ज्ञान की बातें अधिक हों, उसको आध्यात्मिक साहित्य कहते हैं, और जिसमें ज्ञान की बातें कम, संसार की बातें अधिक हों, उसको भौतिक साहित्य कहते हैं। आध्यात्मिक साहित्य पढ़ने से क्या होगा? आपका मन बदलेगा, मन पर सकारात्मक असर पड़ेगा।

दूसरी चीज, आसन-प्राणायाम कीजिये, शाम को आधा घण्टा टहलिये, समय मिले और भजन में मन लगे तो किसी मन्दिर में बैठकर भजन कीजिये। रोग को दूर करने के लिये दृढ़ संकल्प की आवश्यकता है।

संसार में एक बहुत बड़ी शक्ति है जिसको हमने भगवान नाम दिया है। उसका वैसे कोई नाम नहीं है, यह हमने एक नाम दे दिया क-ख-ग, और वह शक्ति तुम्हारे अन्दर है, हमारे अन्दर है, फिर भी हम मन्दिर जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि मन्दिर मत जाओ, मगर वह केवल मन्दिर में ही है, तुम्हारे अन्दर नहीं है, तुम्हारे घर में नहीं है, ऐसी बात नहीं है। वह घट-घट वासी है। एक और बात याद रखो, हर मनुष्य अपना कर्म भोगता है। सबका कर्म अलग-अलग है। तुम्हारा कर्म तुम्हारी स्त्री के कर्म से अलग है, तुम्हारी माँ का अलग है, तुम्हारे पिताजी का अलग है। कर्म सब को भोगना पड़ता है। रामकृष्ण परमहंस इतने बड़े महात्मा थे, उन्होंने भी कर्म भोगा। स्वामी विवेकानन्द जी इतने बड़े संत थे, उनको भी कर्म भोगना पड़ा। राम जी भगवान के अवतार थे, उन्होंने दु:ख क्यों भोगा? जो भी मनुष्य शरीर धारण करके आया है, उसके ऊपर कर्मों का एक कानून लागू हो जाता है।

इन चीजों पर थोड़ा सोचो। भले ही संसार में रहो, पैसा कमाओ, मगर याद रखो यह जीवन का लक्ष्य नहीं है। यह तो करना पड़ेगा, मजबूरी है। खाना-पीना, पैसा कमाना, नौकरी करना, बच्चा पैदा करना—यह तो मजबूरी है, इसलिये थोड़े ही पैदा हुए हैं। यहाँ से तुम कलकत्ते जा रहे हो, ट्रेन में कुछ खाओगे, यह तुम्हारी मजबूरी है जबकि लक्ष्य तुम्हारा कलकत्ता है। इसी तरह मनुष्य के जीवन का लक्ष्य केवल एक ही है—भगवान की स्मृति। मनुष्य को भगवान की याद हमेशा बनी रहे, जैसे प्रेमी को प्रेमिका की याद बनी रहती है। मनुष्य जीवन का प्रयोजन केवल यही है, नौकरी-चाकरी तो मजबूरी है। जब संसार में आए हो तो दो रोटी तो कमानी पड़ेगी, घर तो चलाना पड़ेगा। काम, क्रोध, लोभ इत्यादि तो हैं ही, बच्चे और स्त्री तो हैं ही, तब क्या करेंगे, सब भूखे मेरेंगे क्या? सांसारिकता तो निभानी पड़ती है, मगर वह जीवन का लक्ष्य नहीं है। कहावत भी है न—आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास। ऐसे ज्ञान की बहुत जरूरत है और वह ज्ञान अपने अन्दर पैदा होना चाहिये।

स्वामीजी, जब जप करते हैं या ध्यान करते हैं, उस समय मन कहीं और लगा रहता है, उसके लिये क्या करें?

उसके लिये कुछ नहीं कर सकते, वह तुम्हारे हाथ में नहीं है। मन को वश में करना मनुष्य के हाथ में नहीं। तुम ध्यान करते जाओ, तुम अपना काम करो, मन अपना काम करेगा। जैसे माँ खाना बनाती है तो बच्चे पर नजर रखती है, वह भागते रहता है, उसी तरह मन भागते ही रहेगा, मन को वश में करना संसार का सबसे कठिन काम है। जिसने मन को वश में कर लिया वह मनुष्य नहीं, भगवान है। जिसने मन को पकड़ लिया वह आदमी नहीं, वह तो साक्षात् ईश्वर का रूप है।

इसलिये ध्यान के वक्त अगर तुम्हारा मन चंचल भी रहता है तो भी अपना अभ्यास मत छोड़ो। गीता पढ़ रहे हो तो गीता पढ़ो, जप करते हो तो जप करो, पाठ करते हो तो पाठ करो, कीर्तन करते हो तो कीर्तन करो, पूजा करते हो तो पूजा करो, यह नहीं सोचना कि मेरा मन तो मेरे साथ है ही नहीं, कोई फायदा नहीं। फायदा होगा, क्योंकि भगवान के पास पहुँचने के लिए दो ही रास्ते हैं। एक रास्ता तो यह जो तुम कह रहे हो, योग का और दूसरा रास्ता है विश्वास का। मन को एकाग्र करके एक बिन्दु पर लाना एक मार्ग है, और दूसरा मार्ग है विश्वास याने भक्ति। एक मार्ग को हमलोग कहते हैं पिप्पिलिका मार्ग, जिस पर चींटी की तरह धीरे-धीरे चलते हैं, और दूसरा है विहंगम मार्ग, जिसमें चिड़ियाँ की तरह उड़कर जाते हैं। विहंगम मार्ग उन लोगों के लिये है जो त्याग में, तप में निपुण हो सकते हैं, जिनके रास्ते में मोह-माया नहीं पड़ती, जिनको स्त्री, पुत्र, बहू से कोई मतलब नहीं है। सब को फेंककर चले जाते हैं, जैसे भगवान बुद्ध, जैसे शुकदेव। सब कुछ छोड़ दिया, जिसको जीना है, जिए, जिसे मरना है, मरे। ऐसा त्याग पूर्वजन्म का कर्म होता है, यह बहुत लोगों में नहीं होता, किसी विरले में होता है बस। ऐसा व्यक्ति योग मार्ग का अधिकारी होता है।

योग मार्ग में आप जैसे व्यक्ति जाना चाहेंगे तो मन वश में नहीं आयेगा, सीधी बात बोलता हूँ, पर हाँ, वह थोड़ा-सा अनुशासन जरूर लाता है। परन्तु असली रास्ता है भक्ति का, विश्वास का। भक्ति भगवान के प्रति एक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए होती है। जैसे पत्नी के साथ एक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, या पिता के साथ पुत्र का सम्बन्ध होता है, या नौकर के साथ तुम्हारा एक सम्बन्ध है, या दोस्त के साथ तुम्हारा एक रिश्ता है, वैसे भगवान के साथ अपना एक सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है, जैसे वे तुम्हारे पिता हैं या माँ हैं या भाई हैं।

तुम राम को पूजो या देवी को, किसी को भी पूजो, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम पेड़ा खाओ या रसगुल्ला या बर्फी, सब दूध का बना है, क्या फर्क पड़ता है? यही बात भक्ति पर लागू होती है। भक्ति का मतलब होता है कि तुम भगवान के साथ एक सम्बन्ध स्थापित कर लो। भगवान का कोई भी रूप हो, साकार या निराकार,

यह सब मन का खेल है, अन्दर तो सब एक ही चीज है। चाहे तुम पंखा चलाओ, चाहे फ्रिज चलाओ, चाहे हीटर चलाओ, अन्दर में तो एक ही बिजली है। इसलिये अपने मन को ज्यादा भ्रमित नहीं करना चाहिये।

भगवान के साथ जो सम्बन्ध स्थापित किया जाता है, उसमें सबसे उत्तम सम्बन्ध है—वही सब कुछ करने वाला है और मैं उनके हाथ का उपकरण हूँ, माध्यम हूँ। वे ही सब कुछ मेरे द्वारा कराते हैं। पुरुषार्थ भी मेरे द्वारा कराते हैं और अगर आलस्य है तो वह भी वही कराते हैं। मैं महाबदमाश आदमी हूँ तो वे मेरे से बदमाशी करवाते हैं। माने तुम्हारे जीवन की जो सारी-की-सारी अभिव्यक्ति है, वह सब उसकी माया है। अपनी तरफ से असंतुष्ट नहीं होना चाहिये कि मैं अच्छा नहीं हूँ। तुम जो हो, ठीक हो क्योंकि उसने तुम्हें वैसा बनाया है। अब जैसे मूर्तिकार ने मूर्ति बनाते समय उसके पैर तो बना दिये, पर हाथ नहीं बनाए तो मूर्ति सोचती है, अरे मेरे हाथ तो बनाए नहीं। जब हाथ-पैर सब कुछ बना दिये तो मूर्ति कहती है, देखो न, मेरी आँख ही नहीं है। हमेशा असंतुष्ट।

मनुष्य को उस मूर्ति की तरह अपने जीवन से असंतुष्ट नहीं होना चाहिये। तब मन शांत होता है। इसका मतलब यह हुआ कि तुम इस बात को मानकर चलो कि मेरे जीवन का सूत्रधार भगवान है, मेरे मन का प्रेरक भगवान है, मेरी नियती का निर्देशन भी भगवान ही कर रहा है। मेरे मन में अच्छे-बुरे विचार जो आते हैं, वे

भी भगवान ही कर रहे हैं। दया, सुख, दु:ख, करुणा, सेवा—यह सब भगवान की लीला समझ कर करो, मन में केवल प्रवृत्ति की इच्छा रखकर मत करो।

जीवन में सब सुखमय हो, सब शुभ हो, इस इच्छा को रखकर नहीं चलना चाहिये क्योंकि ऐसा सम्भव नहीं है। अगर सम्भव भी हो तो परेशानी ही आयेगी। कितने धनवानों को हमने देखा है, बड़े दु:खी हैं, नींद ही नहीं आती है। अपने को उस सुख से, उस पैसे से, उस बड़े बंगले और मोटर-गाड़ी से, उस सुन्दर बीवी से क्या करना, जब नींद ही न आती हो और गोली खाकर सोना पड़ता हो, खाना ही नहीं पचता हो और हाजमे की दवाई लेनी पड़ती हो, डॉक्टरों को देखना पड़ता हो। यह भी तो दु:ख है न? आखिर दु:ख किसको कहते हैं और सुख किसको? कोई बड़ा आदमी बन गया, बंगला-बीवी हो गया, पैसा हो गया, क्या यह कोई सुख है? यदि सुख है तो रोते काहे को हो?

असल में इतना जानना है कि सुख-दु:ख भगवान ने सबको दिया है। घर में कोई पैदा भी होता है और मरता भी है, कोई बात मानता है तो कोई बात नहीं भी मानता है, प्रेम भी होगा और झगड़ा भी होगा, नहीं होता है क्या? सब के घरों में होता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है। अगर केवल दिन हो, रात हो ही नहीं तो आदमी परेशान हो जायेगा। भगवान श्री राम को देखो, राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास मिल गया, पैदल चले जंगल में और फिर औरत का किसी ने अपहरण कर लिया। उसे वापस जीत कर आए तो बदनामी हो गई और उसे छोड़ना पड़ा। एक महापुरुष के जीवन के दु:ख का हाल देखिये, उन्होंने अपने ऊपर ये आपदाएँ क्यों लाईं जबकि वे अवतार थे? श्रीकृष्ण को देखिये, पैदा होने से पहले ही कंस की हिट-लिस्ट में थे और जिन्दगी भर भागते रहे, मथुरा से द्वारिका भागना पड़ा। मरने के पहले उनके सारे यादव कुल का नाश हो गया था।

दु:ख-निराशा-असफलता और सुख-आशा-सफलता, ये हर व्यक्ति के जीवन में आते हैं। घर में कभी बच्चा जन्मता है, कभी आदमी मरता भी है। मगर जब कोई मरता है तब उसके दु:ख का असर ज्यादा होता है। अगर तुम्हारे घर में आज कोई बच्चा जन्मे, और आज ही कोई मर जाए तो रोओगे या हँसोगे? आदमी जरूर रोयेगा।

इसलिये जीवन को नये तरीके से देखो। भगवान ने जो कपड़ा दिया है, धन दिया है, स्वीकारो। जीवन को आध्यात्मिक मार्ग में ही चलाना, उससे क्या होगा? सुख-दु:ख कम होगा, और यदि वह कम नहीं हुआ तो दु:ख का प्रभाव जरूर कम होगा। रामकृष्ण परमहंस को रोग था, पर रोग का प्रभाव नहीं था, क्योंकि वह उनके मन का स्वभाव ही नहीं था। दु:ख हो, लेकिन उस दु:ख का प्रभाव मन पर नहीं पड़े तो दु:ख पचास प्रतिशत कम हो जाता है।

—10 मार्च 1998, रिखियापीठ

गीता में उत्तम योगवेत्ता

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

समाज में प्रचलित मान्यता तो यही है कि आत्मानुभव, आत्मज्ञान या आत्मसाक्षात्कार के लिए जो भी उपाय या विधियाँ मनुष्य अपनाता है, उनमें भक्तियोग ही सब से सरल, सुसाध्य, सुलभ और श्रेष्ठ है। परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे कि भक्तियोग सर्वाधिक द्रुत, निरापद, सुगम और निश्चित मार्ग है। शास्त्र भी कहते हैं कि कलियुग में केवल भगवान का नाम-स्मरण मनुष्य को मुक्ति के द्वार तक ले जाने में सक्षम है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

लेकिन भक्ति के सम्बन्ध में एक समस्या उठ खड़ी होती है कि जब हम भक्ति के विषय में बौद्धिक विश्लेषण एवं चिन्तन करने लगते हैं, तब भक्ति की अवस्था और इसके गूढ़ रहस्य को नहीं समझ पाते। आप स्वयं चिन्तन कीजिये कि आपके व्यक्तिगत जीवन में भक्ति की क्या अवधारणा है। क्या ईश्वर में आस्था रखना ही भक्ति है? क्या रोज प्रात: मंदिर में धूप-दीप दिखाना ही भक्ति है? क्या सत्संग

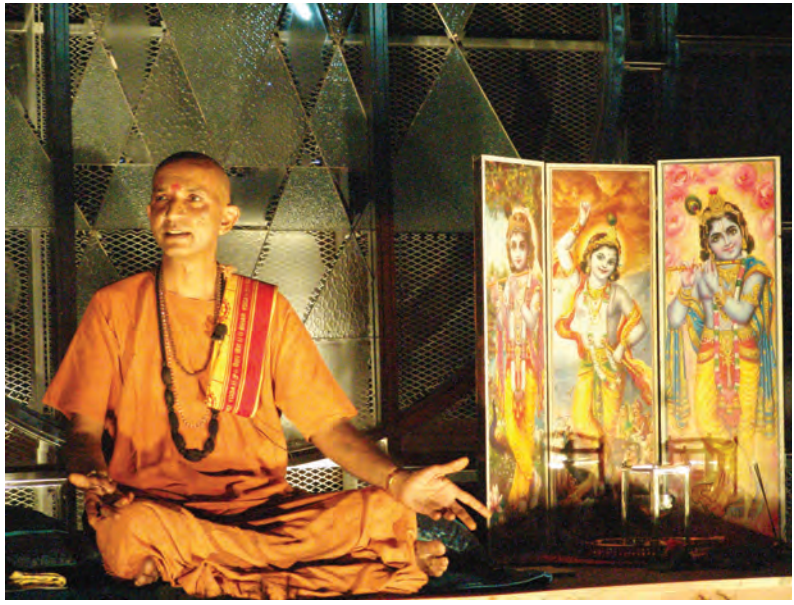

और संतों की सेवा ही भक्ति है? क्या हरि कथा प्रसंग सुनकर अश्रुपात या रोमांच हो जाना ही भक्ति है? हर व्यक्ति की अलग-अलग परिभाषा होती है भक्ति की, और अपनी परिभाषा एवं विचारधारा के अनुसार हम कभी साकार को महत्त्व देते हैं, तो कभी निराकार को।

मान लें कि हम साकार की उपासना करते आये हैं और कोई हमें कह दे कि साकार की नहीं, निराकार की उपासना उत्तम है, तो हम पूर्व की उपासना को छोड़ कर इस नवीन उपासना में लग जाते हैं। उपासना में यह परिवर्तन स्वयं अन्तर्द्वन्द्व का परिचायक है, क्योंकि हमें खुद मालूम नहीं कि भक्ति क्या है। कोई कहता है साकार की उपासना करो, तो हम उसे ही उत्तम मानकर वही करते हैं। कोई कहता है कि निराकार की उपासना करो, तो हम उसे ही उत्तम मानकर करने लगते हैं। ऐसा तो मनुष्य का भ्रान्तिपूर्ण स्वभाव है तथा स्वभाव की यही चञ्चलता व्यवहार, विचार और कर्म में दिखलायी देती है। जब साधक अपनी अस्थिर मानसिकता को शान्त कर, स्थिर और केन्द्रित होकर, दोनों में से किसी एक मार्ग को पकड़ता है, तब उसी मार्ग में उसे उपलब्धि होती है।

वास्तव में साकार और निराकार, दो अलग मार्ग होते हुए भी इनके गुणों में कोई भेद नहीं है, लेकिन जीवन में मनुष्य का कोई साधनात्मक आधार, साधनात्मक भूमिका नहीं होने पर बौद्धिक रूप से सब समझते हुए भी वह अन्तर्द्वन्द्व में पड़ा रहता है। हम आपसे कहते हैं कि एक इष्ट पर ध्यान करो, एक मंत्र का जप करो, तो आप उसे यंत्रवत् करने लगते हैं, क्योंकि स्वामीजी ने कहा है। बाद में किसी दूसरे महात्मा से मिलते हैं और वे आपको एक अन्य पद्धति की शिक्षा देते हैं, फिर आप उसे भी अपना लेते हैं। जीवन में साधनात्मक भूमिका के अभाव में कभी इधर, कभी उधर डगमगाते रहते हैं और प्रश्न करते हैं कि साकार और निराकार में भेद क्या है।

साकार और निराकार, दोनों एक ही परमात्मा को अपने भीतर में धारण करने की प्रक्रियायें हैं। चाहे परमात्मा को साकार रूप में धारण करो, चाहे निराकार रूप में, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। साकार और निराकार को हम जल और वाष्प के रूप में देखते हैं। दोनों में भेद क्या है? भेद है और नहीं भी है, क्योंकि वाष्प जल का गैसीय रूप है और जब वही वाष्प घनीभूत हो जाती है, तो जल का रूप ले लेती है। अगर कमरे में वाष्प भरी हो तो उस कमरे में आपको इधर-से-उधर जाने में कोई कठिनाई नहीं होगी, पर जब वाष्प जल बनकर जलाशय और नदी का रूप धारण करता है, तब उस जलराशि में चलना सम्भव नहीं होता। तत्त्व एक है, लेकिन गुणों में अन्तर आ जाता है। निराकार और साकार भी इसी के सदृश है—निराकार वाष्प और साकार जल है।

साकार जल है क्योंकि साकार की अनेक रूपों में अभिव्यक्ति होती है। जल हमेशा ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है और अपने प्रवाह-क्रम में अनेक

प्रकार की भूमियों से गुजरता है। निराकार वाष्प के सदृश है, गैसीय। वह जल की तरह नहीं बहता। निराकार अवस्था अपने आप में समाहित होने की स्थिति है, जहाँ पर किसी प्रकार की अभिव्यक्ति नहीं, निश्चित गति या प्रवाह नहीं है। इसलिए निराकार वाष्प और साकार जल है।

अब प्रश्न है कि इन दोनों में अधिक गौरव किसको मिलता है। एक ही परमात्मा के साकार और निराकार, दोनों गुण हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास जी ने कहा है–

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥

इनमें से मनुष्य के लिये कौन उत्तम योग देता है? अर्जुन गीता में श्रीकृष्ण से प्रश्न करता है कि प्रभु, आपने अपने दोनों गुणों को बतला दिया, अब यह बतलाइये कि इन दोनों के अनुयायियों में उत्तम योगवेत्ता कौन है। उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं–

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मता:॥12.2॥

'मेरे साकार रूप में अपने मन को एकाग्र करके निरंतर मुझ में युक्त रहने वाले जो सेवक अतिशय श्रद्धा से युक्त होकर मेरे सगुण रूप की उपासना करते हैं, वे मुझे दोनों तरह के सेवकों में उत्तम योगी मान्य हैं।'

संसार में प्रचलित दो प्रकार की उपासनाओं, साकार और निराकार में साकार सरल है और निराकार कठिन। एक मनुष्य, जिसकी कोई साधनात्मक भूमिका नहीं है, वह सर्वप्रथम किस मार्ग का चयन करेगा? चयन करता है साकार मार्ग का। भक्ति में पहला कदम साकार से लिया जाता है। इसीलिये प्रभु कहते हैं कि साकार ही, जहाँ से भक्ति का प्रारम्भ होता है, मुझे अधिक मान्य है।

साकार के द्वारा ही मानव जीवन में परिवर्तन होना सम्भव है, क्योंकि इस उपासना के क्रम में ईश्वर तत्त्व में मन को केन्द्रित करना सहज होता है। निराकार की उपासना में ईश्वरीय तत्त्व पर मन को केन्द्रित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है, क्योंकि निराकार में सभी अनुभूतियों का निषेध होना आवश्यक है। अगर निराकार में सभी अनुभूतियों का निषेध हो जाए, तो आध्यात्मिक चेतना की उन्नति एवं प्रगति, चेतना की विभिन्न अवस्थाओं एवं आयामों में विकास और परिवर्तन कैसे सम्भव होगा? निराकार की स्थिति है– *नेति, नेति,* यह नहीं, यह नहीं। इसीलिये इस श्लोक में प्रभु ने अपनी स्वीकृति साकार उपासना को प्रदान की है। प्रभु की मान्यता है कि जो भक्त या उपासक अपनी सम्पूर्ण भावना को केन्द्रित कर उनके साकार रूप की उपासना करता है, उनके साकार रूप में एकमय होने का प्रयत्न करता है, वह उत्तम योगवेत्ता है। साकार उपासना को इसलिये भी श्रेष्ठ माना जाता

है कि साधारण-से-साधारण मन भी साकार में स्वयं को स्थिर कर लेता है। चेतना की एकाग्रता का प्रारम्भ होता है साकार उपासना से।

इस बात को याद रखें कि साकार और निराकार के उपासकों को मोक्ष साध्य है। दोनों को ईश्वर प्राप्ति सम्भव है। जब प्रभु कहते हैं कि जो मुझ (साकार) में मन को केन्द्रित कर पूर्ण श्रद्धा से युक्त होकर नित्य-निरंतर मेरी उपासना करते हैं, वही मुझे प्रिय हैं, उत्तम हैं, श्रेष्ठ हैं, तो उनका तात्पर्य किसी एक व्यक्ति से नहीं, बल्कि हर प्राणी से है, जिसने पूर्व की अपनी समस्त विचारधाराओं को त्याग कर स्वयं को समर्पित कर दिया है।

साकार रूप में समर्पण की स्थिति का आना उत्तम है, क्योंकि द्वैत को समाप्त करने और अद्वैत की साधना के लिए साकार सुलभ है। निराकार उपासना में कभी-कभी सरदर्द होता है, भ्रम होता है कि मैं जो कर रहा हूँ, वह ठीक है या नहीं, मैं गलत रास्ते में तो नहीं हूँ। कभी-कभी निराकार मार्ग के साधक को कठिन तपस्या करनी पड़ती है, कभी-कभी सुषुप्ति का अनुभव होता है, क्योंकि मन को केन्द्रित रखने का कोई आधार तो रहता नहीं।

साकार में प्रीति हो जाती है, मन मिट जाता है, सुख प्राप्त होता है, नम्रता और एकाग्रता की स्थिति प्राप्त होती है। ये सभी साकार की अवस्थायें हैं, जो एक साधक अपने जीवन में अनुभव करता है। इसका मतलब यह नहीं कि निराकार हेय या उपेक्ष्य है। याद रखिये कि निराकार उपासना विलक्षण, प्रतिभासम्पन्न व्यक्तियों के लिए है, जिन्होंने उस उच्च, परा अवस्था या विचार को प्राप्त किया है।

योग चक्र – निरंजनास्त्र

हे गुरुवर, हे नाथ, स्वयम्भू स्वामी हे,
हे करुणामय, हे सर्वेश्वर नमामि हे।
गुणसागर गुणगान करें क्या, यह जग इस रुख देख रहा है।
कलियुग अपनी पीड़ा हरने, बांध आस कर जोड़ खड़ा है।
हुआ अवतरण आदि गुरु का, जग में डंका बजा हुआ है।
देव, ऋषि दरबार पधारे, त्रिकाल घटित पग लोट रहा है।
धरती माँ सी सहनशीलता, जग को मोहित बना रही है।
पवन देव से नि:संग होकर, मुक्तिता में रम रहे हैं।
सलिल-सी अनुकूलता ने, हर कदम लक्ष्यमय किया है।
हे अग्निजित्, अग्नि जैसी ग्राह्यता ने,
प्रेम-पथ स्वर्णिम किया है।
सम्मान देकर चर-अचर को,
आकाश सी व्यापिता है पाई।
प्रार्थना के अटपटे-से शब्द सुन कर,
स्पष्टता क्रमबद्धता देते निराली।
चक्रसुदर्शन धारी ने पुन: कलियुग त्राण हित,
अदम्य तप, मन्थनों अरु विद्या से
योग चक्र प्रकटित किया है।
यम, नियम, संकल्प और संस्कार अहो,
जिसके दमकते तीक्ष्ण आरे हैं।
विश्व को योग के पार चलने की,
नूतन दिशा देती आपकी अंगुली।
थाम लिया है योग चक्रास्त्र, निरंजनास्त्र,
कि जिसकी प्रखरता और तीक्ष्णता से,
कल्मष तिमिर घबरा उठे हैं,
और ज्ञानयति अति पुष्ट हो नाचने लगे हैं।
नवज्ञान प्रभात की लालिमा दिखने लगी है,
कि जिसमें विश्व को नई दृष्टि मिली है।
और छा गया है चहुँ ओर
उद्दाम संकल्पमय, आनन्दमय,
ज्ञानमय, प्रकाशमय आशीष।

– संन्यासी आत्मकीर्ति, रांची

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सनातन धर्म किसे कहते हैं?

सनातन का मतलब होता है जिसका न आदि है न अन्त। अब एक वृत्त का अन्त कहाँ है और उसकी शुरुआत कहाँ है? जिस बिंदु पर भी तुम अंगुली रखोगे वहीं पर उसका आदि और अन्त दोनों आरम्भ होता है। इसी प्रकार सनातन धर्म में भी कोई बिंदु नहीं जहाँ तुम कह सको कि यहाँ से हमको शुरू करना है और यहाँ पर खत्म करना है। सनातन शब्द इस चीज को दर्शाता है कि व्यक्ति के धर्म और कर्म का अन्त कभी नहीं होता, वह हमेशा चलता है। वह शुरू से चलते आया है, और हमारे नहीं रहने के बाद भी चलते रहेगा, केवल हम तक सीमित नहीं है। इसीलिये हमारे मनीषियों ने सनातन धर्म को कर्त्तव्य-प्रधान देखा। सनातन धर्म का तात्पर्य हुआ कि जीवन की अच्छाई को प्रकट करो। जो तुम्हारे भीतर का सौन्दर्य है, जो तुम्हारे भीतर के पुष्प हैं उनको प्रकट करो इस जीवन में और वही सनातन धर्म हुआ।

सनातन धर्म का उद्देश्य ईश्वर से मिलन नहीं है। जैसे वैष्णव धर्म में विष्णु प्रधान हैं, शाक्त धर्म में देवी प्रधान हैं, सौर्य धर्म में सूर्य प्रधान हैं, गाणपत्य धर्म में गणेश प्रधान हैं, वैसे सनातन धर्म में कौन प्रधान हैं? कोई नहीं। जब सनातन धर्म का कोई प्रतीक ही नहीं, स्वरूप ही नहीं तो फिर सनातनता का सम्बन्ध है अच्छे कर्मों से, जो धर्म संगत और न्याय संगत होते हैं, जिनसे समाज की वृद्धि होती है। धर्म और न्याय, इन दोनों से जुड़ा हुआ है सनातन धर्म। अगर तुम अच्छा करते हो तो तुम सनातन धर्मावलम्बी हो, भले ही तुम किसी भी सम्प्रदाय से जुड़े हो। तुम शैव, मुस्लिम, सिख, ईसाई, शाक्त, जैन, बौद्ध या कुछ भी हो सकते हो, वह तुम्हारी मान्यता है, तुम्हारा अपना विश्वास है, लेकिन तुम्हारा जो मानवीय आचरण है वह धर्मों के चिंतनों से परिवर्तित कभी नहीं होता। खाना बनाने का तरीका हमेशा वही रहेगा, सब्जी काटनी ही पड़ेगी, पानी को उबालना ही पड़ेगा, वह परिवर्तित नहीं होगा, भले सब्जी बदल दो, मसाला बदल दो, लेकिन प्रक्रिया नहीं बदल पाओगे। उसी प्रकार हम समय अनुसार मसाला वगैरह बदल देते हैं, पर सनातन धर्म की प्रक्रिया वही है, उसका क्रम, पद्धति, लक्ष्य और उद्देश्य वही है।

धर्म दो प्रकार के होते हैं—जीवन में अच्छाई को प्रकट करना सनातन धर्म कहलाता है और जीवन में अपने आराध्य को भक्ति समर्पित करना युग धर्म कहलाता है। युग धर्म गुरु और आराध्य से जुड़ा होता है। बुद्ध आये, अपने विचार दिये, वे गुरु बन गये और उनकी शिक्षा ने एक मत का रूप ले लिया। तीर्थंकर लोग आये, उनकी शिक्षा ने एक सम्प्रदाय का रूप ले लिया। साधु लोग आये, उन्होंने कुछ

किया, उनके जीवन और उनकी शिक्षा ने एक पंथ का रूप ले लिया। जब तक वह शिक्षा समाज के लिये प्रासंगिक है, युगधर्म के नाम से जानी जाती है। फिर कोई आता है जो इस शिक्षा को और आगे बढ़ाता है तो इस युग धर्म में परिवर्तन होता है। इस तरह युग धर्म मनुष्य और आराध्य से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन सनातन धर्म मात्र चिंतन, व्यवहार और कर्म से अपना सम्बन्ध रखता है, यही अन्तर है।

–30 अगस्त 2015, गंगा दर्शन

ईश्वर को प्रसन्न करने का क्या रास्ता है? हमें कैसे पता चलेगा कि ईश्वर हमसे प्रसन्न हैं?

ईश्वर को प्रसन्न करना है तो उसके लिए गीता का बारहवाँ अध्याय पढ़ लो, क्योंकि वहाँ पर भगवान कृष्ण बतलाते हैं कि उनको किस किस्म का व्यक्ति पसंद है। लोग कहते हैं कि भगवान सबको चाहते हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं है। वक्ता लोग बोल देते हैं क्योंकि उनको बोलना है, आपको खुश करना है और आपसे पैसा ऐंठना है, लेकिन सत्य यह है कि भगवान सभी को नहीं चाहते हैं। एक पिता भी अपने दुष्ट पुत्र को नहीं चाहता है, वह भी एक अच्छे पुत्र की तलाश में रहता है। उसी प्रकार भगवान भी दुष्ट पुत्र को नहीं चाहते हैं, वे भी एक अच्छी संतान की तलाश में हैं। और अर्जुन ने जब उनसे पूछा था तो उन्होंने उत्तर दिया था कि मुझे किस प्रकार के लोग पसंद हैं, प्रिय हैं। उस व्यक्ति का वर्णन उन्होंने किया है गीता के बारहवें अध्याय में। पढ़ लो उसको और अपने साथ तुलना करो कि तुम वैसे हो या नहीं। तुरंत मालूम पड़ जाएगा कि तुम भगवान के प्रिय हो अथवा नहीं।

वहाँ पहली योग्यता है– *अद्वेष्टा सर्वभूतानां,* उसी में तुम हार जाओगे। तुम भगवान के प्रिय अभी तो नहीं हो, लेकिन अगर इन गुणों को अपने जीवन में धारण कर पाओ तो बन सकते हो। अभी तुम्हें दुनिया में इतना संघर्ष झेलना पड़ता है, कष्ट उठाना पड़ता है, बार-बार भगवान से प्रार्थना करने के लिए मंदिर जाते हो कि मेरे दु:ख को दूर करो, यह स्पष्ट बतलाता है कि तुम इस समय ईश्वर के प्रिय नहीं हो। अगर ईश्वर के प्रिय होते तो दु:ख आता ही नहीं।

–9 अगस्त 2015, गंगा दर्शन

अगला जन्म मनुष्य योनि में ही हो, यह किस बात पर निर्भर करता है? अगले जन्म का निर्धारण कैसे होता है?

अगले जन्म का निर्धारण होता है अपने जीवन के कर्मों, जीवन के व्यवहारों के द्वारा। यह कोई आवश्यक नहीं कि मनुष्य का जन्म हुआ है इसलिए आगे भी मनुष्य का ही जन्म होगा, क्योंकि मनुष्य की जो वासना होती है और मनुष्य का जो कर्म होता है, वही उसके भाग्य का निर्माण करते हैं। वासना और कर्म का संयोग ही

प्रारब्ध कहलाता है, और हर व्यक्ति अपने प्रारब्ध को जीता है।

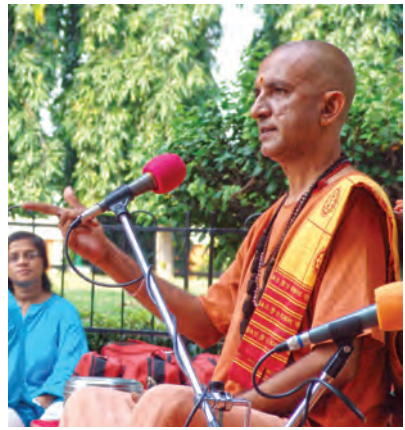

हमारे शास्त्रों ने इस मनुष्य जीवन को एक कक्षा के रूप में माना है। जब व्यक्ति किसी कक्षा में भाग लेता है और उसे पास करता है तो आगे बढ़ता है। अगर फेल करता है तो वहीं रहता है, बार-बार फेल करता है तो उसे पहली वाली कक्षा में जाकर फिर से शुरू करना होता है। जैसे शिक्षा में आगे बढ़ना आपकी प्रतिभा, ग्रहणशीलता और क्षमता पर निर्भर करता है वैसे ही मनुष्यत्व को प्राप्त करना भी क्षमता, ग्रहणशीलता और व्यवहार पर निर्भर करता है। मनुष्य जीवन में संस्कारों का जो केन्द्र है वह है चेतनता। पशु में मन है, लेकिन चैतन्यता नहीं है। पशु में भी वही मस्तिष्क है, वही मन है, लेकिन उसे प्रति क्षण की सजगता, प्रति क्षण का ज्ञान नहीं रहता। एक कुत्ता आ जाए और हम रोटी ले लें हाथ में तो दुम हिलाते आ जायेगा। डंडा मारें तो भाग जायेगा। लेकिन एक मिनट के बाद फिर रोटी दिखा दें तो सामने आयेगा। उसकी स्मृति नहीं होती। हाँ, पहचानता जरूर है, सब चीजें करता है, लेकिन जिसे दीर्घकालिक स्मृति कहते हैं, कि आदमी ने अभी मुझे डंडा मारा और अभी मुझे खाना दे रहा है, वह नहीं रहती। पर आदमी में तो वह स्मृति है न! बीस साल पहले आपने हमसे क्या किया था, हमें अच्छे-से याद है।

यह जो चैतन्यता है यही मनुष्य के उत्थान का और यही मनुष्य के पतन का कारण बनती है। जब चैतन्यता, जब सजगता अच्छे कर्मों से, अच्छे संस्कारों से प्रभावित होती है तो मनुष्य का उत्थान होगा, और उसमें मनुष्य फिर अगले जन्म में मनुष्य ही बनेगा। लेकिन अगर इस जीवन में हमारा व्यवहार, हमारा कर्म उचित नहीं है और हमारी वासनाएँ हमें पशुता की ओर ले जाती हैं, तो अगले जन्म में हम या तो पशु बनेंगे या जो भी हमारी वासना का केन्द्र था उस रूप को हम धारण करेंगे। इसलिए अगर अगले जन्म में मनुष्य योनि को प्राप्त करना है तो अपने विवेक, ज्ञान और वैराग्य का सदुपयोग करते हुए जीवन के व्यवहारों को संतुलित बनाते हुए आगे बढ़ना चाहिए। तभी जाकर हमें अगले जन्म में अगली कक्षा में जाने का अवसर मिलेगा। नहीं तो *पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम्*—चाहे माँ के पेट में हो, चाहे जानवर के पेट में हो, चाहे कीड़े के पेट में हो, चक्र तो निरंतर चलता रहेगा।

—11 अगस्त 2013, गंगा दर्शन

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

_योगा_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

_योगविद्या_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।